Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बदलती दुनिया

अनन्त श्री धर्म सम्राट पूज्य श्री स्वामी

करपात्री जी महाराज

सम्पादक :—

श्री सदानन्द सरस्वती

श्री वेदान्ती स्वामी

श्री करपात्रीपीठ केदार घाट

वा रा ण सी

CC0. In Public Domain. Nirukant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

मास्तष्क

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

"भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ" पुस्तक स्व० श्री विनायक दामोदर सावरकर की प्रखर प्रतिभा का परिणाम है। विद्वान लेखक ने उसमें अतीत घटनाओं की समालोचनाओं के आधार पर उस समय की विचारधाराओं के औचित्यानौचित्य पर विचार किया है। हम भी उसी औचित्यानौचित्य पर विचार करेंगे।

आप लिखते हैं। "मुसलमानों के पूर्वकाल में शक, यवन आदि ने जो देश पर आक्रमण किये, उनका उद्देश्य हिन्दुस्तान पर अपनी राजसत्ता स्थापित करना था। उनके आक्रमणों का कारण कोई धार्मिक या सांस्कृतिक शत्रुता नहीं थी। परन्तु इस नये इस्लामी शत्रु के आक्रमण के पीछे हिन्दू-राष्ट्रसत्ता को उद्ध्वस्त कर सम्पूर्ण हिन्दुस्थान पर मुस्लिम-आधिपत्य के साथ पूर्व के शत्रुओं को जो नहीं सूझी, ऐसी महत्त्वाकांक्षा थी, जो राजनैतिक महत्वाकांक्षा से कई गुना अधिक प्रचण्ड थी। उनमें धार्मिक महत्वाकांक्षा धधक रही थीं जो हिन्दू-राष्ट्र के जीवन-प्राण कहलाने वाले हिन्दू-धर्म और हिन्दुत्व को नष्ट करने तथा मुस्लिम-धर्म को तलवार के बल हिन्दुओं पर लादने के लिए उनके आक्रमण को सतत उत्तेजना देती रही। इस हेतु समस्त एशिया महाद्वीप के लाखों मुसलमान विभिन्न राष्ट्रों से निकलकर हिन्दुस्तान पर सदियों तक निरन्तर आक्रमण करते रहे।"

वस्तुतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कूटनीतिज्ञ लोग जानते हैं कि भौतिक पराधीनता सरलता से दूर की जा सकती है, पर आध्यात्मिक या मानसिक पराधीनता बड़ी भयंकर होती है। एक व्यक्ति के हाथ-पैरों में हथकड़ी-बेड़ी डालकर उसकी जबान पर ताला लगा देने पर भी वह मन तथा मस्तिष्क से स्वतन्त्र है और बाह्य भौतिक बन्धनों को काटने का सफल प्रयास कर सकता है। किन्तु यदि मन या मस्तिष्क

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को क्लोरोफार्म सुंघाकर या किसी अन्य औषधि से विकृत या पराधीन बना दिया जाय तो हथकड़ी-बेड़ी कट जाने पर भी वह कुछ नहीं कर सकता। इसलिए भौतिक शरीर पर विरोधियों का शासन कुछ क्षण के लिए सह्य हो सकता है, परन्तु आध्यात्मिक-मानसिक शरीर पर विरोधी शासन असह्य होता है और वैसा होना भी चाहिए। फिर भी मुसलमानों के बर्बर अत्याचारों, तलवारों या बलात् धर्मान्तिरण से भीं बास्तव में हिन्दू-मस्तिष्क स्वतन्त्र ही रहा। अतएव वे न केवल बराबर उनका विरोध करते रहे, बल्कि और भी कट्टर होते गये। गुरु गोविन्द सिंह के दो नौनिहालों एवं अन्याय लोगों ने सिर कटाना मंजूर किया, पर चोटियों के दो बाल देना उन्हें मंजूर नहीं था।

किन्तु अंग्रेजों ने तो मीठी छुड़ी चलाकर, शिक्षा-सभ्यता में रद्दोबदल कर हमारे मस्तिष्क ही बदल दिये, जिससे हम घर बैठे विदेशी बन गये। मुसलमानों ने मन्दिरों को तोड़ा, शास्त्रों को जलाया; फिर भी हमने नये-नये, पहले से कहीं अधिक मन्दिर बना लिये। शास्त्रों को कंठस्थ रखकर बचाया और उत्तरोत्तर अच्छे-अच्छे भाष्य-वार्तिकों का निर्माण किया। लेकिन अंग्रेजों की शिक्षा एवं अन्य कूटनीतियों से मन्दिरों से भी हमारी आस्थायें मिट गयीं, शास्त्रों से विश्वास उठ गया और मन्दिर हमारे लिए एक म्युज़ियम जैसी वस्तु बन गये। बड़े से बड़े आधुनिक नेताओं में शास्त्रों, वेदों एवं तदुक्त धर्मों पर विश्वास ही नहीं रह गया। स्वयं श्री सावरकर जी ने ही धर्म को 'देश कालानुसार मनुष्यों द्वारा कल्पित नियम' ही माना है। वे हिन्दू-धर्म को राष्ट्र की प्राणप्रिय वस्तु कहते हैं, पर वह हिन्दू-धर्म और हिन्दुत्व क्या है, यह नहीं बता पाते। सिद्धान्त-दृष्टि से अनादि-अपौरुषेय वेद और तदनुसारी आर्ष धर्मग्रन्थ ही हिन्दू-धर्म और हिन्दुत्व का आधार हो सकते हैं। किन्तु सावरकर जी वेद-शास्त्रों की उपेक्षा करके तदुक्त धर्म को धड़ल्ले से ठुकराने का परामर्श देते हैं उन्होंने अपनी वसीयत (मृत्यु-पत्र) में लिखा है कि "मेरे शव का विद्युत द्वारा दाह किया जाय और मेरी अन्त्येष्टि न की जाय।" क्या यह हिन्दू-शास्त्रों और तदुक्त धर्मों का सम्मान है?

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हिन्दू-राष्ट्र तथा हिन्दू-धर्म के लिए मुस्लिम तथा ईसाई दोनों ने भयंकर शत्रुता से कार्य किये हैं। मुस्लिमों के वाह्य कर्म बड़े ही उग्र और वीभत्स रहे, जबकि ईसाई ऊपर से कोमल व्यवहार करते हुए भी भीतर से अत्यधिक हानिकारक थे। विद्वान् लेखक ने ठीक ही लिखा है। कि "मुसलिम आक्रमणों से जब देश संकटग्रस्त था, उसी समय ईसाइयों ने भी ईसा की दसवीं शती में मालावार में घुस पैठ की। ईसा की १५वीं शती के पुर्तगीज, डच, फ़ांसीसी, अंग्रेज आदि ईसाई-राष्ट्र पश्चिम समुद्री मार्ग से हिन्दुस्थान पर टूट पड़े। इनका भी स्वरूप वैसा ही राक्षसी था, जैसा मुसलमानों का।"

वस्तुतः आधुनिक इतिहास विरोधियों द्वारा बिगाड़े गये हैं। विदेशी इतिहासकारों और हमारे प्रत्यक्ष शत्रुओं द्वारा लिखे गये इतिहास सही नहीं। उनमें हिन्दुओं की गौरव-गाथाओं को बार-बार लुप्त किया गया और उन पर आयी आपत्तियों की ही घटना को हिन्दू-इतिहास के रूप में प्रदर्शित किया गया। सर सुन्दरलाल ने अपने 'भारत में अंग्रेजी राज़' पुस्तक में कुछ न्यायप्रिय अंग्रेजों के ही लेखों से इतिहास-सम्बन्धी बेइमानी की चर्चा की है। विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की पुस्तकों में हूणों के आक्रमण के बाद की हिन्दुओं की स्थिति के सम्बन्ध में एक-दो पंक्ति भी न लिखकर सीधे मुसलमानों की सिंध पर चढ़ाई के वृत्तान्त का वर्णन किया गया और बराबर एक के बाद एक इस्लामी आक्रमणों के अध्याय जुड़ते रहे हैं। इस तरह उनके अनुसार हिन्दुओं का इतिहास परायों के आक्रमण और हिन्दुओं की पराजय और उनकी अखण्ड-दासता की ही कहानी है। इसलिए डा० अम्बेडकर जैसे हिन्दू-धर्म-विद्वेषी ने लिखा है "हिन्दुओं का जीवन निरन्तर पराजय का जीवन रहा है। यह इस प्रकार का जीवन जीना है जिसके विषय में प्रत्येक हिन्दू लज्जा का अनुभव करेगा।"

वस्तुतः लेखक का यह कहना ठीक ही है कि "हूणों के पतन के बाद हिन्दुओं के दिग्विजय का इतिहास है।" सन् ५५० के बाद हिन्दू-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजाओं ने विभिन्न भागों से सिन्धु नदी को पारकर आज जिन्हें सिन्धु, विलोचिस्तान, अफगानिस्तान, हिरात, हिंदूकुश, गिलगित, काश्मीर आदि कहा जाता है और जो प्रदेश सम्राट अशोक के पश्चात् हिन्दुओं के हाथ से यवन, शक, हूण, म्लेच्छो के हाथ चले गये थे, छीनकर हिन्दुओं ने ५०० वर्ष तक अपने अधिकार में रखा। इतना ही नहीं चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के उस पार जाकर हिन्दूकुश तक हिन्दू-विजयवाहिनियों ने वैदिक धर्म की ध्वजा फहराई।

एक समय काश्मीर के उस पार मध्य एशिया के खोतान में भी हिन्दू-राज्य प्रस्थापित थे। तभी तो स्मिथ जैसे विदेशी इतिहासकार ने भी आश्चर्य के साथ कहा था कि हिन्दुओं के हाथों मिहिरगुल की पराजय तथा हूणशक्ति का सम्पूर्ण विनाश होने के उपरान्त लगभग पाँच शताब्दियों तक भारत ने विदेशी आक्रमणों से मुक्ति का अनुभव किया। डाक्टर अम्वेदकर के पागल आक्षेपों का इसे सीधा खण्डन समझना चाहिए।

मुहम्मद विनकासिम के आक्रमण के पचास वर्ष पूर्व से ही हिन्दुस्थान पर अनेक वार मुसलमानों के हमले होते रहे। इसमें छोटी-२ टुकड़ियों से लेकर विशाल सेनाएँ तक भाग लेती रहीं। किन्तु हिन्दुओं ने सदैव उन प्रयत्नों को विफल कर दिया था। अन्त में अरव के मुख्य खलीफा के ओमान स्थित उस्मान नामक गवर्नर ने सिन्ध के हिन्दू-राज्य पर प्रत्यक्ष आक्रमण किया, परन्तु सिन्ध के तत्कालीन ब्राह्मण राजा चाचा ने अरव सेना को नष्ट कर सेनापति अब्दुल अजीज को पराजित कर दिया। उसके वाद सन् ६४ तक अरवों ने कोई उल्लेख्य गड़वड़ी नहीं की। हाँ, सीमावर्ती मरकनी नामक छोटे से दूरस्थ हिन्दू-प्रदेश को जीत कर मुसलमानों ने वहाँ के हिन्दुओं को वलपूर्वक मुसलमान वना लिया। आगे चलकर वे ही कट्टर जंगली बलोच हुए।

ई० सन् ७११ में अरवी मुसलमान सेनापति ने ५० हजार की विशाल सेना लेकर सिन्ध पर प्रथम विशाल आक्रमण किया। यहाँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वैदिक धर्माभिमानी ब्राह्मण राजकुल का 'दाहिर' नामक राजा राज्य करता था। वहाँ वैदिक-धर्मियों की ही बहुसंख्या थी, वौद्ध अल्पसंख्यक थे। उसके पूर्व हूणो का उग्र राजा मिहिरगुल वौद्धों पर भीषण अत्याचार करता था। वह यद्यपि हूणवंशीय म्लेच्छ था, तो भी वैदिक देवता रुद्र का उपासक था, अतः वैदिक धर्माभिमानी था। मिहिरगुल के बाद हिन्दू-राजाओं के शासन में वौद्धों को स्वधर्मपालन के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

बौद्धों का राष्ट्रद्रोह :—

मुसलमानों के आक्रमण से वौद्ध अत्यन्त प्रसन्न थे। उनका विश्वास था कि जैसे यवनों (ग्रीक लोगों) के राजे मिन्यांडर प्रभृति और कुषाणों के कनिष्क आदि ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर भारत में बौद्ध-राज्य की स्थापना की, वैसे ही मुसलमान भी बौद्ध बनकर बौद्ध राज्य की उन्नति करेंगे। अरबी सेनापति ने जैसे ही महत्वपूर्ण 'देवल' नामक बन्दरगाह को छीना, वैसे ही वौद्ध नेताओं ने आगे बढ़कर उस विदेशी सेनापति का स्वागत किया और कहा कि 'दाहिर के समान वैदिक धर्मी राजा और उसके लोगों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। हमारे गुरु (बुद्ध) ने हमें अहिंसा की शिक्षा दी है। हम शस्त्र धारण कर राजाओं के युद्ध में हिस्सा नहीं लेते। आप विजयी हैं, आप ही हमारे राजा हैं।' राजनीति-कुशल मुहम्मद बिनकासिम ने उस समय बौद्धों को अभयदान दिया। मुसलमान इतिहासकारों ने इस वृत्तान्त के सम्बन्ध में लिखा है कि 'कासिम की सेना को दुर्गम मार्गों की जानकारी देने, सेना को स्थान-स्थान पर रसद पहुंचाने में, दाहिर की सेना का रहस्य बताने में बौद्धों और उनके भिक्षुओं ने सभी प्रकार की हर सम्भव सहायता की।'

दाहिर और कासिम की सेना में भयंकर युद्ध हुआ। कासिम के पास तोप तो नहीं, परन्तु एक दूरमारक अस्त्र थी, जो हिन्दुओं के पास नहीं था। इस कारण हिन्दुओं का बल कम पड़ा। दाहिर की सेना में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुछ अरबी मुसलमान भी सैनिक थे। उन्होंने भी मुस्लिम-सेना का साथ दिया और अपने मालिक को 'काफिर' कहकर द्रोह किया। हिन्दुओं की इन शत्रुपक्षीय लोगों पर विश्वास करने की दुर्नीति का परिणाम सभी

को भोगना पड़ा। [परन्तु यहाँ भी कोई न सुने तो किसका दोष है? शास्त्र स्पष्ट कहते हैं। न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नाति विश्वसेत्। अर्थात् अविश्वस्त पर तो विश्वास करना ही नहीं चाहिए, विश्वस्त पर भी अति विश्वास नहीं करना चाहिए।] फिर दाहिर ने बड़ी वीरता से लड़कर वीरगति पाई। उसके गिरते ही हिन्दू-सेना में भगदड़ मच गयी। दाहिर की वीरगति सुनते ही उसकी तेजस्विनी रानी ने सैकड़ों हिन्दू-वीरांगनाओं के साथ धधकती चिताओं में जौहर का वरण किया। फिर भी 'सूर्या' और 'परिमला' दो राजकन्याएँ तथा अन्य स्त्रियाँ उन बर्बरों के हाथ लग ही गयीं। उन आततायियों ने लूटपाट, अग्निकाण्ड करते हुए नगरों, ग्रामों में सर्वत्र कत्ले-आम किया।

संकट के समय बौद्धों के कृत्य :—

राजा के मरते ही बौद्धों ने बौद्ध-विहारों में मुसलमानों के स्वागतार्थ विशालकाय घण्टे बजाये और मुसलमान राजा के उत्कर्ष के लिए सामूहिक प्रार्थनाएँ की। फिर भी उनकी कामनापूर्ति नहीं हुई। मुसलमानों ने निष्ठुरतापूर्वक बौद्धों का भी सफाया कर दिया। हिन्दू तो बीच-बीच में लड़ते रहे, उधर तो कुछ भय भी था; किन्तु बौद्धों को तो उन्होंने निःशंक हो गाजर-मूली के समान काट डाला। जो बौद्ध मुसलमान बन गये, वे ही जीवित रह सके। बौद्धों में प्रचलित 'बुद्ध-प्रस्थ' का अपभ्रंश ही मुसलमानों में प्रचलित 'बुत-परस्त' शब्द है। बौद्ध-विहारों के प्रस्थों में अधिकतर मूर्तियाँ दिखाई देती थीं। ऐसे बुद्ध-प्रस्थों या बुत-परस्तों को विध्वंस करना मुसलमानों के लिए धर्माज्ञा थी।"

यहाँ भी विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बौद्ध लोग भी वैदिक हिन्दू ही थे, किन्तु वे सुधारक हो गये। उनका शास्त्रों से विश्वास

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उठ गया। वे वेद और वैदिक धर्मग्रन्थों का प्रामाण्य नहीं मानते थे। बुद्ध स्वयं भी हिन्दू ही थे। वे भी प्रतिक्रियास्वरूप ही वैदिक-धर्म के विरोधी हुए। उन्होंने बौद्ध धर्म चलाया, पर उनके यहाँ भी कोई स्थायी प्रामाणिक शास्त्र नहीं था : वर्ण, आश्रम, जाति-पाँति की कोई आस्था उनमें और उनके अनुयायियों में नहीं थी। फिर संकट की घड़ी में वे बौद्ध भी कैसे रह सकते थे? अतएव उन्हें मुसलमान बनने में कुछ भी देर न लगी। जो लोग हिन्दू-शास्त्र, धर्म, ईश्वर, जाति-पाँति मानते थे, वे ही प्राण संकट के समय भी हिन्दू रहे, प्राण दे डाले, पर धर्म नहीं छोड़ा। प्रश्न उठता है कि इसी तरह सुधारक हिन्दू भी शास्त्र नहीं मानता, जाति-पाँति में विश्वास नहीं करता, तब मौका पड़ने पर क्या वह भी बौद्धों के समान राष्ट्रद्रोही नहीं हो सकता? सुधारक हिन्दू-धर्म की बातें तो करता है, हिन्दुत्व का गुणगान भी गाता है किन्तु उसका हिन्दुत्व और धर्म निराधार अथवा हिन्दू-धर्म निरपेक्ष है। कारण वह कहता और लिखता है कि 'परिस्थिति के अनुसार धर्म एवं धार्मिक नियम बनते हैं और वे तोड़े भी जा सकते हैं।

श्री सावरकर भी कहते हैं—"स्मृतियाँ बनती हैं। कभी उनका महत्त्व भी होता है, परन्तु उनको सनातन मान लेना उचित नहीं। उपयोग खत्म होते ही उनका खत्म हो जाना ही उचित है।" उन्हीं का अनुकरण करते हुए सनातनधर्मी सुधारकों में भी श्री मदनमोहन मालवीय जी तथा श्री गाँधी जी आदि ने भी आचार-विचार, खान-पान, विवाह, शुद्धि-अशुद्धि, विलायत-यात्रा आदि के प्रसंग में प्राचीन शास्त्रों का भरपेट विरोध किया। आजकल नये 'सनातनी सुधारक' भी निकल रहे हैं, पर स्पष्ट है कि मौका आने पर ये भी टिकाऊ नहीं रह सकते। आधुनिक लोग भी मानते हैं कि 'भारत की पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाओं पर अधिकांश बौद्ध थे और वे अनायास मुसलमान बन सके। किन्तु उत्तर प्रदेश आदि में जहाँ जाति-पाँति, खान-पान के सम्बन्ध में कट्टरता थी, वहाँ मुसलिम-शासन में रहकर भी कितने ही हिन्दू-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुसलमान नहीं बने, कट्टर हिन्दू ही बने रहे। इसी से सिद्ध होता है कि जाति-पाँति द्वारा हिन्दू-समाज की रक्षा हुई।

अनादि-अपौरुषेय वेद नित्य शास्त्र हैं। आर्षग्रन्थ वेदों का विवरण-मात्र है। वेदों एवं आर्षग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित धर्म ही स्थिर धर्म है। उसमें कभी रद्दोबदल नहीं किया जा सकता। वैदिक अग्निहोत्रादि वर्णाश्रमानुसारी धर्म ब्राह्मणादि जाति-मूलक है। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्यों तथा शूद्रों के भी समान कर्म नहीं है। वर्णों में रक्त साङ्कर्य होने से धर्म बाधा उपस्थित होती है। इसीलिए विवाह, खान-पान आदि का व्यवहार वैदिक दृष्टिकोण से शुद्ध धार्मिक है। जैन, बौद्ध आदि शास्त्र प्रामाण्य नहीं मानते। इसीलिए सुधारक इस सम्बन्ध में अधकचरे हैं। वे वेद-शास्त्र का नाम तो लेते हैं, पर उनका परम्परा प्राप्त अर्थ न मानकर मनमानी अर्थ करते हैं। जातिभेद, विवाह, खान-पान की वैदिक मर्यादा नहीं मानते। फलस्वरूप प्राण-संकट उपस्थित होने पर उन्हें भी सरलता से बौद्धों के समान ही धर्मान्तरित किया जाना किसी के लिए कठिन नहीं।

बौद्ध धर्म का विनाश :—

श्री सावरकर के अनुसार "बौद्ध-धर्म के विनाश का कारण केवल वैदिक धर्म-धुरंधरों द्वारा सफल खण्डन ही नहीं था, किन्तु सामाजिक और राजकीय कारण भी थे। परायों के आक्रमणों के राष्ट्रीय संकट के समय बौद्ध-संघों द्वारा सामूहिक तौर पर की गयी राष्ट्र-द्रोही तथा आततायी हिंसाओं द्वारा जागरूक हिन्दू-समाज उन्हें उखाड़ फेकने को सन्नद्ध हो गया। उस समय राष्ट्र-द्रोही प्रवृत्तिवालों का संघ ही बौद्ध-संघ बन गया। अतः समस्त भारत में बौद्धों को राज्याश्रय नहीं मिल सका।" उत्तर प्रदेश के कट्टर वैदिक राजपूत वैदिक धर्म के उद्धार में लगे थे। उस समय बौद्ध-संघ पंगु बना पड़ा था। जन सामान्य भी बौद्धों की आततायी हिंसा से तंग आकर ऊब गया। बौद्धों के इन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भीषण-अत्याचारों का वर्णन पूर्णतः अवैदिक लोगों ने किया है। विन्सेण्ट स्मिथ ने लिखा है—'अशोक के अनुसार ही हर्ष ने भी मांसभक्षण और प्राणिहत्या करने वाले को प्राण दण्ड का आदेश जारी कर रखा था, जिसे राजा भी क्षमादान नहीं कर सकता था। इस प्रकार उसके राज्य में मछली, पशु-पक्षी तथा हिंस्र जानवर तक की हत्या में प्राण दण्ड दिया जाता था। गुजरात के जैनमतालम्वी राजा कुमारपाल ने भी बौद्ध राजा अशोक का अनुसरण किया। प्राणिहत्या करने वालों को पकड़ने के लिए गुप्तचरों का व्यापक प्रवन्ध था। अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। इसका नमूना निम्नलिखित है :

शहीद जूँ का स्मारक :—

एकबार एक अभागे व्यापारी ने एक जूँ को मसलकर मारा डाला। उस अपराध में उसे आन्हिलवाड़ा लाकर एक विशेष न्यायालय में उपस्थित किया गया। वहाँ उसे सव सम्पत्ति जव्त किये जाने का दण्ड सुनाया गया। एक व्यक्ति कच्चा मांस तश्तरी में ले जाते हुए पकड़ा गया तो उसे प्राणदण्ड दिया गया। जूँ मारने वाले की सम्पत्ति जव्तकर जैनाचार्यों की व्यवस्थानुसार जूँ का स्मारक स्वरूप विशाल स्मृति-भवन बनाया गया। उसका नाम 'यूकाविहार' (जूँ का मन्दिर) रखा गया। यह बात जैन-लेखकों ने वड़े गौरवपूर्ण ढंग से वर्णन की है। इन घटनाओं के कारण भी लोगों ने बौद्ध-धर्म का जआ उतार फेंका।

वस्तुतः अहिंसा तो वैदिक-धर्म में भी है, फिर भी अवस्थाभेद से बहुत कुछ भेद है। एक संन्यासी या वनस्थ के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्राणी को न सताना अहिंसा है। किसी का अनिष्ट चिंतन करना भी हिंसा है। किन्तु देश, राष्ट्र, धर्म की रक्षा के लिए आवश्यक संग्राम की हिंसा अहिंसा ही है। इसी तरह वैदिक यज्ञ-यागादि के देवतोद्देश्य से कदाचित् पशुओं का उपयोग भी अहिंसा ही है, क्योंकि शास्त्रानुसार ही उससे पशु की सद्गति होती है। वैष्णवों के अनुसार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हिंसनीय की अननुग्राहिका हिंसा ही हिंसा और अनुग्राहिका हिंसा अहिंसा है। अशुद्धमिति चेन्न शब्दात्' (ब्र० सू० ३. १.२५) सूत्र के भाष्य में स्पष्ट कहा गया है कि हिंसादि दोष युक्त होने से वैदिक कर्म अशुद्ध है, यह पूर्वपक्ष उचित नहीं, क्योंकि वैदिक वचनों के अनुसार वैदिक कर्म परम पवित्र है। उस पशु का प्रयोग हिंसा नहीं है। वैदिक वचनों के अनुसार ही धर्माधर्म का निर्णय होता है। जैसे 'मा हिंस्यात्' आदि बैदिक-वचनों के अनुसार ही हिंसा पाप है, वैसे ही 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' आदि वचनों के अनुसार पश्वालम्भन (यज्ञों में पशु का प्रयोग) धर्म ही है।

छुआछूत और बौद्ध धर्म :—

आमतौर पर प्रसिद्ध है कि वैदिक सनातन धर्म में ही स्पर्शास्पर्श का विधान हैं। परन्तु श्री सावरकर जी कहते हैं कि "बौद्ध लोग छुआछूत नहीं मानते थे, इस प्रसिद्धि के ठीक विपरीत बात है। बौद्ध राज्य में प्राणि-हिंसा और अपराधी के लिए प्राणदण्ड की व्यवस्था थी। खोज-खोजकर उक्त अपराधी को प्राण दण्ड दिया जाता था। अतः बौद्धराज्य-काल में भी छुआछूत अत्यन्त दृढ़ हो गई।' प्रमाणस्वरूप उन्होंने बौद्ध मतावलम्बी चीनी प्रवासियों के विचार दिखलाये हैं। वे लिखते हैं कि "जिन जातियों ने बौद्ध धर्म के अनुसार अहिंसा धर्म का पालन नहीं किया, जिन्होंने हिंसात्मक धन्धों को नहीं त्यागा, उन चाण्डाल आदि जातियों को इस अपराध के कारण नगर से बाहर निकाल दिया जाता था। उन्हें गाँव से दूर कोढ़ियों की तरह निवास करना पड़ता था। जब कभी उनको गाँवों में आने की अनुमति दी जाती थी, तो उन निर्वासित अछूतों को अपने हाथ में घुँघरु बँधी एक लकड़ी लेकर या टिमकी बाँधकर उसे बजाते हुए जाने की सख्त आज्ञा थी, जिससे उसकी आवाज सुनकर हर एक पथिक सावधान होकर उनकी छूत से बचा रहे। वैदिक, बौद्ध, तथा जैनों में भी यह प्रथा रही, पर बौद्ध काल में यह प्रथा अत्यन्त निष्ठुर थी। अछूत लोग भी अपने से नीच जातियों को अछूत मानते

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

थे। वैदिकों की सापेक्ष अहिंसा की अपेक्षा बौद्धों की आततायी अहिंसा में ही चाण्डाल आदि जातियों की अधिकाधिक दुर्दशा हुई। बौद्ध काल में मछली मारने वाले, मांस भक्षण करने वालों को प्राण दण्ड देने वाले बौद्ध राज्य की अपेक्षा लाखों लोगों की उपजीविका के साधन तथा सापेक्ष हिंसा को दण्डनीय मानने वाले वैदिक-राज्य को ही चाण्डाल आदिकों ने अधिक सुखकारी माना।'

वस्तुतः वैदिकों में अस्पृश्यता घृणामूलक नहीं विज्ञानमूलक है। आज भी चिकित्सक एक रोगी को स्पर्श कर हाथ धोकर ही दूसरे रोगी को छूता है। रजोधर्म होने पर अपनी माँ-बहन तथा पत्नी भी अस्पृश्य मानी जाती है। सूतक-पातक में ब्राह्मण अपने को ही अस्पृश्य मानकर देवताओं को नहीं छूता। एक महाविद्वान वैदिक भी अपनी माता की पूजा करता है उसका चरणोदक लेता है, फिर भी उसे शालग्राम का स्पर्श करने से रोकता है। क्या उसे अपनी ही माँ से घृणा है? वेदों ने श्वान, सूकर आदि योनियों के साथ ही उन्हीं जैसा ब्राह्मण, चाण्डाल आदि योनियों का भी वर्णन किया है—'ब्राह्मणयोनिं श्वयोनिं चाण्डालयोनिं वा...............' (छन्दो० स० ६ ख० १० मं० ७) जैसे पक्षियों में काक, गृद्ध आदि अस्पृश्य हैं, वैसे ही मनुष्यों में भी कुछ लोग अस्पृश्य होते हैं।

जिन लोगों ने बलात् अथवा भय से बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था, वे हजारों अछूत बौद्ध-धर्म छोड़कर पुनः वैदिकधर्मी बन गये। फलतः मुसलमानों के सिन्ध में प्रवेश के पहले ही हिन्दुस्तान में ऊँचे वर्गो से लेकर जन सामान्य में बौद्धों की संख्या निरन्तर घटती जा रही थी। इस निरन्तर भीषण क्षीणता का प्रत्यक्षदर्शी चीनियों ने वर्णन किया है। बुद्ध-निवास के कारण पवित्र माने जानेवाले तथा सुसम्पन्न स्थान बुद्धगया, मृगदाव, श्रावस्तीनगर, कुशीनगर, कपिलवस्तु आदि बौद्ध तीर्थ उस समय उजड़ गये थे। वहाँ यत्र-तत्र जंगल का दृश्य दीखने लगा। इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तरह मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व यद्यपि बौद्धधर्म तेजी से नष्ट हो रहा था, फिर भी सिन्ध, काम्बोज, पूर्वी बंगाल में उनका अस्तित्व स्थिर था। विहार में बौद्ध भिक्षुओं की बड़ी संख्या थी। उस समय सर्वत्र वैदिक राज्य पनप रहे थे। इस कारण बौद्ध सम्प्रदाय में राष्ट्रद्रोही उपद्रव अथवा जनता पर बलात् बौद्ध-धर्म थोपने की शक्ति नहीं थी। परन्तु वैदिकराज्यों में उन्हें स्वधर्म पालन की पूर्ण स्वतन्त्रता थी, यह चीनी बौद्धों ने माना है। पाश्चात्य इतिहासकारों का पूर्वाग्रह बन गया था कि वैदिक राजसत्ताधरों ने बौद्धों का तलवार के वल पर निर्मूलन किया होगा। उनपर वैदिक-धर्म बलात् लादा गया होगा।

इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने तत्कालीन इतिहास का मन्थन कर खूब छान-बीन की, फिर भी उनको कोई अपवाद स्वरूप भी प्रमाण नहीं मिला।

मुसलमानों के समागम से ही बौद्धों का समुच्छेद हुआ था। एक हाथ में तलवार दूसरे में कुरान लेकर आक्रमण करने वाले मुसलमानों के द्वारा ही बौद्ध-विहार, बौद्धस्तूप तथा बौद्ध समाप्त किये गये। प्रायः सभी बौद्ध मुसलमान हो गये! वहुत से लोग अपने प्राण और धर्मग्रन्थ लेकर चीन भाग गये। बहुत से नष्ट हो गये, पर युद्ध किसी ने नहीं किया। इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं कि बौद्ध के किसी समुदाय अथवा सेना ने मुसलमानों का सामना किया हो।

दिल्ली, लखनऊ, उत्तर प्रदेश आदि जहाँ एक-से-एक क्रूर सुलतान एवं वादशाहों ने राज्य किया, वहाँ उस समय वैदिक हिन्दुओं की वहुलता थी और आज भी है। यहाँबौद्धों की संख्या कम हुई। जहाँ-जहाँ बौद्ध अधिक थे, वहीं मुसलमान अधिक बनें। वहीं उनकी बड़ी संख्या (मुसलमानों की जनसंख्या) पायी जाती है। मुसलमानों की आततायी हिंसा के सामने बौद्धों की आततायी अहिंसा पराजित हो गई।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आगे लेखक कहता है कि "जैसे गंगाजी से निकलकर अलग-अलग जल-प्रवाह पुनः गंगा की मुख्य धारा में मिल गये, वैसे ही बौद्ध-धर्म हिन्दू-धर्म में जा मिला। बुद्ध को भी हिन्दू अवतारों में सम्मिलित कर लिया गया। इस तरह बुद्धमत्त का पूर्ण हिन्दूकरण हो गया।"

[वस्तुतः बौद्ध-धर्म आज भी विदेशों में सत्तारूढ़ है। भारत में भी वह शनैः शनैः पनप रहा है और उसकी उग्रता क्रूरता और विलगाव की प्रवृत्ति आज भी वैसी ही है, जैसी पहले थी। बुद्ध के अवतार की बात भी किसी समझौते से नहीं, किन्तु शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार हुई। वह भी गौतमबुद्ध को नहीं, किन्तु विष्णुयश ब्राह्मण के पुत्र बुद्ध को अवतार माना गया है। बुद्ध और गौतमबुद्ध में वैसा ही भेद है जैसे लक्ष्मी और गृहलक्ष्मी में। बौद्धों के 'लंकावतार-सूत्र' में अनेक बुद्धों की चर्चा है। लंकावतार में कर्मों के अनुसार उनकी विभिन्न उत्कृष्ट, अपकृष्ट जातियों का भी उल्लेख है।]

हिन्दुओं की प्रतिरोध-शक्तिः—

"तीन सौ वर्ष तक हिन्दुओं ने मुसलमानों को सिन्ध से बाहर पैर नहीं फैलाने दिया। बार-बार उनपर आक्रमण कर हिन्दुओं ने सिन्ध पर पुनः विजय प्राप्त कर ली और उसे दो सौ वर्ष तक अपने अधिकार में रखा। सन् ७११ में सिन्ध पर मुसलिम-विजय हुई। वस्तुतः तीन सौ वर्ष के कालखण्ड के सम्बन्ध में इतिहासकार चुप हैं। इसका रहस्य यही है कि उनके समय तक सिन्ध में मुसलमान हिन्दुओं की प्रतिरोध-शक्ति से प्रतिरुद्ध थे। यह कम समय नहीं। अंग्रेज भारत में डेढ़ सौ वर्ष रहे, इतने में ही प्रतीत होता है कि उन्होंने शताब्दियों तक हिन्दुस्थान पर शासन किया होगा।

"इस समय मुसलमानों का आवेश समाप्त हो गया था; यह नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसी समय पश्चिमी एशिया, अफ्रीका महाद्वीप,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दक्षिण फ्रांस तक के यूरोपीय प्रदेशों को वे पादाक्रान्त कर सके थे। किन्तु वे सिन्ध से आगे नहीं बढ़ने पाये, हिन्दुओं की प्रतिरोध-शक्ति से सिन्ध में ही जकड़े रहे। चित्तौड़ के वाप्पा रावल ने तो सिन्ध पर आक्रमण कर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया था। बाद में अरबों ने पुनः उसे जीत लिया, परन्तु अन्त में सुमेर राजपूतों ने सिन्ध पर अपनी सत्ता प्रस्थापित ही कर ली।"

मुसलमानों के अत्याचार :—

"गान्धार के उस पार गजना के अन्य जाति के मुसलमानों की सत्ता स्थापित हुई। वहाँ के सुबुक्तगीन ने गांधार राजा पर आक्रमण कर वायव्य दिशा से हिन्दुस्थान में घुसने की तैयारी प्रारम्भ कर दी। उधर पंजाव और गांधार के हूणों को पादाक्रान्त कर हिन्दुओं ने हिन्दूकुश तक अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया था। ब्राह्मणवंशीय राजसत्ता वहाँ शासन करती रही। सुबुक्तगीन के समय उक्त कुल का जयपाल राजा राज्य करता था। उसने मुकाबिले में आक्रमण किया, परन्तु उसे सफलता न मिली। इससे उत्तेजित होकर सुबुक्तगीन ने विशाल सेना लेकर उसपर आक्रमण किया। जयपाल ने आसपास के हिन्दू-राजाओं का आह्वान किया। सबने साथ दिया और उस आततायी से टक्कर ली, फिर भी उसकी पराजय हुई। वहाँ की हिन्दू-राजसत्ता का उच्छेद हो गया। सुबुक्तगीन मर गया। उसका पुत्र गद्दी पर वैठा। वह हिन्दू-द्वेष और धर्मोन्माद में पिता से सौ गुना वढ़ा-चढ़ा, क्रूर मुसलमान था। महमूद गजनी ने, जिसने स्वयं 'बुत-शिकन्द' (मूर्तिभंजक) उपाधि ग्रहण की थी, धर्माधीश खलीफा के सामने प्रतिज्ञा की कि 'यदि मैं सम्पूर्ण हिन्दुस्थान से काफिरों को समाप्त न कर सका, तो सच्चा मुसलमान नहीं।"

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसने सिन्धु नदी पार कर एक के बाद दूसरा हमला करना आरम्भ कर दिया। यहाँ से १००० से ७०० ई० के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाद शताब्दियों तक मुसलमानों के साथ हिन्दुओं के महायुद्धों का क्रम आरम्भ होता है। विजय के कारण महमूद गजनी को आत्मविश्वास हो गया। उधर जयपाल को दो पराजयों से नैराश्य हो गया। १००१ ई० में मुहम्मद गजनी के आक्रमण करने पर सिन्धु नदी के आसपास जयपाल ने फिर उसका सामना किया, किन्तु दुर्दैव से वह धीरोदत्त पुनः पराजित हुआ। उस मान-धन ने अपने पुत्र अनङ्गपाल को राजसत्ता सौंपकर धधकती अग्निचिता में प्रवेश कर प्राणोत्सर्ग कर दिया।

अनङ्गपाल ने भी पिता का व्रतपालन किया। १००६ ई० में मुलतान पर आक्रमण करने के लिए महमूद गजनी ने अनङ्गपाल से सेना ले जाने का मार्ग माँगा, तो अनङ्गपाल ने निर्भीकतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। उसने स्वधर्मरक्षण की दृष्टि से हिन्दू-राजाओं से मिलकर शक्तिसञ्चय किया और १००८ ई० में महमूद के पुनः आक्रमण करने पर मुकाबिला कर मुसलमानों के छक्के छुड़ा दिये। केवल दो प्रहरों के युद्ध में मुसलमानों की व्यूह-रचना अस्त-व्यस्त हो गयी। महमूद पीठ दिखाकर लौटने लगा। इतने में एक अघटित घटना घटी। अनङ्गपाल का हाथी जलते हुए अग्नि-वाणों की मार से भड़क उठा और घूमकर पीछे की ओर भागा। इससे सेना में भगदड़ मच गई। महमूद ने अवसर से लाभ उठाया और अपने भागते हुए सैनिकों को ललकारा और कुछ चुने सैनिकों का व्यूह बाँधकर प्रबल आक्रमण कर दिया।

इस अन्तिम संघर्ष में हिन्दू जीती बाज़ी हार गये। उस महँगी विजय से वह अपने बचे सेनिकों के साथ लौट गया। अनङ्गपाल का पीछा नहीं किया। फलतः पंजाब पर मुसलिम-सत्ता स्थापित नहीं हो सकी। डेढ़ वर्ष बाद उसने फिर अनङ्गपाल पर आक्रमण किया। अनङ्गपाल ने इस बार एकाकी ही अपनी बची-खुची सेना लेकर मुकाबला किया और वीरगति पाई।

१०१० ई० में महमूद ने पंजाब को भी गजनी राज्यों में मिला लिया। पुनः उसने थानेश्वर, मथुरा आदि पर आक्रमण कर धर्मान्धता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के साथ मन्दिरों का विध्वंस, नगरों का अग्निदाह, जनता का कत्लेआम तथा हिन्दू-ललनाओं का अपहरण, धन-सम्पदा की लूट आदि दुष्कर्म कर पुनः गजनी लौट गया। पुनः उसने कन्नौज पर आक्रमण कर घोर लूट-पाट और हत्याकाण्ड किये। १०२३ ई० में उसने ग्वालियर, कालिञ्जर पर आक्रमण किया, तो वहाँ के राजाओं ने प्रतिकार किये बिना उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

सोमनाथ पर आक्रमण :—

१०३६ ई० में उसने सौराष्ट्र के प्रसिद्ध सोमनाथ-मन्दिर पर ऐतिहासिक आक्रमण किया। इस बार उसकी विशाल भीषण सेना के आतंक से सौराष्ट्र का राजा भी अपने नाम को कलंकित कर भाग निकला। उस समय कोई सैनिक-संघटन सामना करने के लिए था ही नहीं। फिर पुजारी ही सामना करने के लिए आगे बढ़े। धर्मरक्षा के लिए आसपास के हिन्दुओं को जो मिल सके, हथियारों को लेकर एकत्रित होने का आह्वान किया। इस आह्वान पर दूर-दूर के बहुत से हिन्दू आ डटे। इसमें किसी का स्वार्थ नहीं था। वह विशुद्ध 'धर्मयुद्ध' था। पर वे प्रशिक्षित सैनिक नहीं थे फिर भी मुहम्मद की व्यूहबद्ध सेना से दिनरात जूझते रहे। मन्दिर के परकोटे के बाहर और मन्दिर के भीतर भी बराबर सशस्त्र प्रतीकार जारी रहा। महमूद ने स्वयं जाकर सोमनाथ की मूर्ति को भंग किया।

मुसलिम इतिहासकारों के अनुसार भी मन्दिर की रक्षा करते-करते कम-से-कम पचास हजार हिन्दू धर्मवीर मारे गये। वस्तुतः एक दिन मरना निश्चित ही है—आज या सौ वर्ष बाद! फिर भी अपने पूर्वजों की मान-मर्यादा के अनुसार भगवान के मन्दिरों के रक्षार्थ मृत्यु से बढ़कर और कोई चीज नहीं।

समर मरण पुनि सुरसरि तीरा।
राम-काज क्षनभंगु शरीरा॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किन्तु खेद की बात है कि सोननाथ के मन्दिर का इतिहास लिखते हुए विदेशी एवं अनेक कृतघ्न हिन्दू-इतिहासकारों ने भी उन पुजारियों एवं हिन्दू-समुदाय की देवता के प्रति भोली-भक्ति का उपहास मात्र किया है। उनके भव्य बलिदानों का रत्तीभर भी गौरव-गान नहीं किया : 'लो देखो, हमने तुम्हारी मुर्तियाँ तोड़ डाली, तुम्हारा देवता हमारा कुछ न कर सका। तुम्हारा देवता झूठा, हम मूर्तिभंजकों का अल्लाह देव ही सच्चा है।'

वस्तुतः हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार मूर्ति ही देवता नहीं है। किन्तु मूर्ति में देवता की भावना से पूजा की जाती है। अतएव एक देवता की लाखों मूर्तियाँ पूजी जाती हैं। स्वभावतः कभी-कभी मूर्तियों का अंग-भंग होता ही रहता है, पर एतावता देवता का अंग-भंग नहीं माना जाता। किसी के चित्र या फोटो का सम्मान या पूजन तो किया ही जाता है और उसके सम्मान से मूर्तिवाले का भी सम्मान समझा जाता है। परन्तु फोटो या चित्र के नाश से फोटोवाले का नाश समझनेवाला कोई मूर्ख ही हो सकता है, समझदार वहीं।

ऐसे मौलवी-मुल्लाओं की डींगों का उत्तर देते हुये वीर सावरकर ने ठीक ही लिखा है : 'क्या इन डींगों को ही सच्ची कसौटी मानें ? अल्लाह को धिक्कारनेवाला चंगेज खाँ और उसके उत्तराधिकारियों ने खलीफा की राजधानी में घुसकर खलीफा को खत्म कर दिया था। अल्लाह के घर मस्जिदों को जला दिया, कितनी मस्जिदों को घुड़साल बना दिया। कुरान की पुस्तकों को घोड़ों के पैरों तले रौंदवाया। तब अल्लाह ने भी चंगेज खाँ आदि का हाथ नहीं पकड़ा। क्या ऐसे सैकड़ों प्रसंगों को देखकर मौलवी-मुल्ला अपने अल्लाह को झूठा और कमजोर मानेंगे ?'

सोमनाथ मन्दिर को ध्वस्त कर अपार धन-सम्पत्ति लूटकर सुल्तान महमूद गजनी लौटने लगा, तो उसे मालूम पड़ा की हिन्दू जनता उत्तेजित हो उठी है। मालवा का नरेश अपनी विशाल सेना लेकर समरांगण में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसकी वापसी की प्रतीक्षा कर रहा है। तव महमूद ने उससे सामना करने का साहस महीं दिखाया। मालवा का सीधा मार्ग छोड़कर वह सिन्धु के मरुस्थलीय मार्ग से गजनी लौट गया। १०३० ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसने हिन्दुस्थान पर १५ वड़े आक्रमण किये थे।

धर्मान्तरण :

श्री सावरकर जी लिखते हैं कि "आगे के इतिहास के अनुसार हिन्दुओं ने महमूद द्वारा विजित राज्यों को फिर से जीत लिया। परन्तु धर्मान्तरित किये हिन्दुओं द्वारा धार्मिक दृष्टि से हिन्दू-राष्ट्र की क्षीण होने वाली संख्या शक्ति की पूर्ति नहीं कर पाये। तत्कालीन हिन्दू-समाज के जातिभेद, छुआछूत, धार्मिक असहिष्णुता आदि विचित्र काल्पनिक विभ्रम हिन्दू-राष्ट्र के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुये। उसी कारण बलात् मुसलमान वनाये जानेवाले हिन्दू मुसलमान ही वने रह गये। उससे मुसलमानों कीं संख्या पीढ़ी दर पीढ़ी वढ़ती गई। उनमें भावी पीढ़ियाँ और कट्टर मुसलमान वन गई। बाद में ईरानी, तुर्की, मुगलों के आक्रमणों के समय वे भी हजारों की संख्या में उनकी सेना में भरती होकर आक्रमणकारी हुए।

"सिन्धु नदी के पार 'धूरी' नामक हिन्दुओं की एक जति निवास करती थी। परिस्थितिवश वह मुसलमान हो हिन्दुओं की कट्टर दुश्मन बन गई। प्रख्यात हिन्दू-द्वेषी सुलतान मुहम्मद गोरी इसी हिन्दू-जाति का था। वस्तुत: अफगानिस्तान, पठानिस्तान, वलोचिस्तान आदि के वहुत-से मुसलमान वहाँ के आदि निवासी हिन्दू ही थे। धर्म के वदलने से उनकी राष्ट्रीयता भी वदलती रही। यही धर्मान्तरता, राष्ट्रान्तरता है।"

'धर्म' शब्द का अर्थ :

यहाँ धर्म शव्द का प्रयोग विभिन्न धर्मों अथवा स्वतन्त्र दर्शन के तत्त्वज्ञान और तुलनात्मक अध्ययन करने तथा उनमें से व्यक्तिगत रूप से

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वीकार करने योग्य गुणों का आचरण करने के अर्थ में नहीं है। किन्तु 'अमुक पुस्तक ईश्वर प्रेरित है, उसकी दो जिल्दों में जो धर्म बताया गया है, वही केवल धर्म है उसके अतिरिक्त अन्य सब असत्य-पाप है' इस प्रकार अहंकार से जो संस्था उस धर्म के तथाकथित तत्त्वज्ञान को ही नहीं, किन्तु आचा-विचार, तिर्बन्ध व्यवहार, भाषा आदि को भी भिन्न धर्मावलम्बियों पर उपदेश के बल पर थोपने में असफल होकर कपट, क्रूरता, बलात्कार तक में संकोच नहीं करती, ऐसी आक्रामक संस्थाओं के लिए 'धर्म शब्द का प्रयोग है। राष्ट्रान्तर ऐसी धार्मिक संस्थाओं द्वारा किये गये धर्मान्तिरण का ही परिणाम है।

वस्तुतः धर्म का स्वरूप तो अनादि-अपौरुषेय वेदों से ही विचारित होता है। ईश्वर, जीव, जगत् अनादि हैं। अतः ईश्वरी शासन-संविधान रूप वेद भी अनादि ही हैं। डेढ़ हजार या दो हजार वर्ष से ही ईश्वर-प्रेरित धर्मग्रन्ध का प्रसार हुआ, यह युक्तिसंगत नहीं। ऐसा होने पर ईश्वर में विषमता दोष होगा; क्योंकि उतने दो हजार के पूर्व के लोगों को कल्याण का मार्ग ही नहीं बताया। अतः कहना होगा कि अनादिकाल से ही ईश्वर और उसका शास्त्र तथा धर्म है। अन्य सादि धर्म और मत उसी के आंशिक रूप हैं। फिर बलात् किसी भी धर्म या विचार को लादकर किसी का धर्मान्तरण करना तो तर्कसंगत भी नहीं।

लेखक आगे लिखते हैं कि "उस समय हिन्दुओं ने जाति-बहिष्कार का प्रति अस्त्र अपनाया। मुसलमानों के धार्मिक आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए रामबाण सरीखा कोई प्रत्यस्त्र नहीं था। पर वह जाति-बहिष्कार धर्मरक्षक न होकर स्वधर्मघातक ही सिद्ध हुआ।

जातिभेद और जाति बष्हिकार :

लेखक के अनुसार "हिन्दूओं द्वारा हूणों के समूलोच्छेद के बाद हिन्दुओं के सैकड़ों नेताओं ने हिन्दू-समाज और हिन्दू-राष्ट्र की राजनैतिक सामाजिक सुस्थिति लाने के लिए राष्ट्रीयस्तर पर सर्वांगीण प्रयास आरम्भ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया। तत्कालीन राजकीय नेतृत्व उदयोन्मुख राजपूतों के प्रतापी राजघरानों को प्राप्त था। उस पुनर्निर्माण में हिन्दू-समाज़ की व्यवस्था जातिभेद की चौखट में जमाकर बिठायी जा रही थी। धीरे-धीरे जाति-प्रथा को जन्मजात जातिभेद का अपरिहार्य रूप प्राप्त हुआ। चार वर्ण और उनके पेट से निकले। अन्यान्य गौण जातिप्रवादों की अभिवृद्धि होते-होते अन्त में शास्त्र की अनुमति से प्रायः सर्वसम्मति से हिन्दूजाति सामाजिक-धार्मिक दृष्टि से चार हज़ार अन्तर्गत जन्मजात जातियों में विभाजित हो गयी। यह परिवर्तन उस काल की वैदिक हिन्दू-राष्ट्र की सामाजिक स्थिति की आवश्यकतानुसार ही हुआ। इसके अनुसार अपनी जाति में ही खान-पान, विवाह रहेगा। बहुत-सी जातियों में अन्य जातियों के साथ रोटी-पानी का व्यवहार दण्डनीय था। लड़की देने-लेने पर भी कड़ा प्रतिबंध था। इसी के अनुसार हुक्का-बन्दी, पानी-बन्दी, बेटी-बन्दी, स्पर्श-बन्दी, शुद्धि-बन्दी, सिन्धु-बन्दी आदि सात नाम हुए। हिन्दुओं की प्रगति में बाधा डालने वाली ये सात बन्दियाँ मानो सात बेड़ियाँ थी। इन्हें म्लेच्छों ने नहीं, किन्तु स्वयं हिन्दुओं ने बुद्धिविभ्रम के कारण स्वधर्मरक्षा के तावीज के रूप में अपने पैरों में ठोक लिया। ये स्वदेशी बेड़ियाँ थीं।

लेखक की हिन्दू-उन्नति की भावना प्रशंसनीय होते हुए भी खेद है कि शास्त्र, धर्म तथा जातिभेद सम्बन्धी उसके विचार भ्रान्तिपूर्ण ही हैं। इसका कारण यही है कि उन्होंने हिन्दू-शास्त्रों का परम्परा से अध्ययन नहीं किया। पाश्चात्य इतिहासों एवं विचारों की समालोचना करते हुए भी वे उनसे अपने को अप्रभावित नहीं रख सके। जड़ विकासवादी पाश्चात्यों ने ही माना है कि 'कोई ईश्वर या स्थायी प्रामाणिक शास्त्र एवं स्थायी धर्म नहीं है। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार शास्त्र-स्मृतियाँ तथा धार्मिक-सामाजिक नियम बदलते हैं। जब तक वे लाभदायक हों, उनसे लाभ उठाना चाहिए। जब वे हानिकारक सिद्ध होने लगें, तब उन्हें तोड़ फेंकना चाहिये।' श्री सावरकर, श्री गोलवलकर आदि सभी इन विचारों से प्रभावित थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वेद अनादि-अपौरुषेय हैं, इस विषय में हमारा संस्कृत भाषा में 'वेदस्वरूपविमर्शः' और हिन्दी भाषा में 'वेद का स्वरूप और प्रामाण्य' पढ़ें। इतिहासवेत्ता भी संसार के पुस्तकालयों में ऋग्वेद से प्राचीन पुस्तक कोई नहीं है, ऐसा मानते हैं। मनु, व्यास वेद को अनादि कहते हैं। उन वेदों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र चार वर्णों की उत्पत्ति परमेश्वर के मुख आदि अंगों से हुई है और उन वर्णों के अनुसार ही ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि आश्रमों की व्यवस्था है। वर्णसंकरता, रक्तसंकरता से बचकर माता की असपिण्डा पिता की असगोत्रा विवाहिता कन्या से उत्पादित संतान ही धर्म-कर्म तथा ईश्वराराधन के सुयोग्य हो सकती है। क्षत्रिय-साध्य राजसूय आदि कर्मों में ब्राह्मण का भी अधिकार नहीं है। कर्मों की व्यवस्था जाति-व्यवस्था पर निर्भर है। फलतः प्रमाद से संकर उत्पन्न हुए। प्रतिलोभ संकर अत्यधिक निन्द्य एवं अनुलोम संकर कुछ कम निन्द्य हुये। संकरों में भी सांकर्य होने से फिर अनेक उपजातियों का होना स्वाभाविक ही था।

वेदों के अनुसार ही मन्वादि धर्मशास्त्रकारों ने वर्णाश्रम-व्यवस्था तथा संकरों के धर्म कर्म की व्यवस्था की है। यह सारी हूणों के पराभव के बाद की व्यवस्था नहीं, किन्तु अनादि वेदों एवं तदाधारित आर्षग्रन्थों की व्यवस्था है।

अतिप्राचीन, लाखों वर्ष पूर्व से भगवान् राम और उनकी रामायण द्वारा भी यह व्यवस्था आदृत थी। मनु तथा अन्य स्मृतिकारों, महाभारत, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि के निर्माता व्यास आदिकों ने इसी का पोषण किया है। तर्क दृष्टि से भी जाति जन्मना सिद्ध होती है। मनुष्य, श्वान, शूकरादि जातियों का सम्बन्ध जन्म से मरणपर्यंत वही रहता है। अच्छा-बुरा या मृत-जीवित अश्व अश्व ही रहता है, गाय गाय ही रहती है। उसमें रद्दोबदल नहीं होता। यदि यह कल्पनामात्र माना जाय और उसमें रद्दोबदल में कोई आपत्ति नहीं तब तो फिर हिन्दू-जाति और हिन्दू-राष्ट्र के भी परिवर्तन में क्या हर्ज है और उसकी रक्षा के लिए इतने त्याग-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बलिदान की क्या आवश्यकता है ? प्राचीनता की दृष्टि से वेदादि-शास्त्रों में ब्राह्मणादि जातियाँ ही प्रसिद्ध हैं। यदि उन्हीं का उच्छेद हो सकता है तव जिस हिन्दू का स्पष्ट रूप से वेद, रामायण, भारत तथा मन्वादि धर्मशास्त्रों में उल्लेख भी नहीं है, उसकी अनुच्छेद्यता कैसे सिद्ध होगी ? यह धर्म केवल काल्पनिक ही है, तो उसकी रक्षा के लिए ही इतना भगीरथ प्रत्न क्यों ?

अतः ब्राह्मणादि जातिभेद को कुछ राजपूतों के नेतृत्व में कल्पित व्यवस्था मानना सर्वथा भूल है। यदि किसी जाति की लड़की से किसी जाति के लड़के के सम्बन्ध में कोई भेद नहीं, धर्म भी काल्पनिक है तो ईसाई और मुसलमान आदि से भी परहेज क्यों ? इसीलिए जाति रक्षा एवं तन्मूलक धर्म की रक्षा के लिये रोटीवन्दी, बेटीवन्दी, स्पर्शबन्नी, आदि ठीक ही है।

जाति-बहिष्कार भी कोई अनहोनी बात नहीं। किसी भी संस्था में स्थायीत्व तभी रह सकता है, जब उसमें अनुशासन हो और नियमोल्लंघन का दण्ड हो। जो संस्था सदस्य संख्यावृद्धि के प्रलोभन में नियमोल्लंघन की परवाह नहीं करती, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। हाँ, परवशता में नियमोल्लंघन का प्रायश्चित तो प्राचीन वैदिक-समाज में भी था ही। सच पूछे स्थिर-शास्त्र स्थिर-धर्म पर आधारित स्थिर जन्मजात जाति-व्यवस्था और जाति-बहिष्कार के कारण ही अभी तक शुद्ध ब्राह्मणादि वर्ण और वेद तथा वैदिक-धर्म अल्पमात्रा में ही सही, सुरक्षित है। हिन्दू, समाज का विनाश, संघटन और उसकी आश्चर्यजनक स्थिरता का यही मूल है। वीज-रक्त की संकरता से बचकर अविकृत शुद्ध परम्परा की रक्षा एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। आज तो गायों, घोड़ों और कुत्तों के भी नस्ल-सुधार का ध्यान रखा जाता है। फिर क्या हिन्दू के वीज-रक्त की शुद्धता मिटाकर आततायी म्लेच्छों का रक्तसांकर्य सम्पादन करके उसका विनाश करना उचित था या हो सकता है ?

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्मृतिकार ऋषियों का अनुवंश-विज्ञान श्रमविभागात्मक सामुदायिक जीवन का विचार ही नहीं, अपितु पारलौकिक-ऐहिक अभ्युदय एवं निःश्रेयस भी उसीं व्यवस्था पर अवलम्बित था। वह हजारों नहीं; लाखों वर्षों से अनेक संकटों को पार करती कोटि-कोटि स्पृश्य-अस्पृश्य सब प्रकार के हिन्दुओं पर अपनी अमिट छाप जीवित है। अनेक ईसाई मिशनरियों ने माना है कि जाति-व्यवस्था ही हमारे ईसाइयत-विस्तार में बाधा है। यह न होती तो अब तक सारे भारत को ईसाई बना लिया होता। असंख्य जाति-समूहों के कारण विच्छिन्न दीखनेवाले राष्ट्र के भीतर से जिस अदम्य एकात्मभाव की भावना के स्फुरण में लेखक हिन्दुत्व एवं हिन्दू-राष्ट्र की कल्पना करते हैं, उसका भी आधार अनादि वेदादि-शास्त्र एवं तदुक्त धर्म में अडिग ही है।

आपके (श्री सावरकर के) अनुसार 'दीखनेवाले इस जाति-भेद के स्वायत्त, किन्तु संयुक्त संघ को जिस आन्तरिक 'अन्तर्यामी एवं अनिर्वाच्य एकात्मभावना ने एक जीव कर रखा है,' वह राष्ट्रिय-भावना हिदुत्व या हिन्दू-धर्म भी स्थिर शास्त्र एवं तदाधारित धर्म पर ही निर्भर है। यदि शास्त्र, कर्म तथा जाति कोई वास्तविक तात्त्विक और प्रामाणिक नहीं, तो फिर सब भावना ही है। गुञ्जा पुञ्ज में वह्नि-भावना तथा विधुर परिभावित कामिनी-भावना ही है। बिना प्रामाणिक आधार के भावना-मात्र अकिञ्चित्कर ही होता है।

जाति-बहिष्कार :

वस्तुतः जाति तो नित्य होती है, वह जन्म से लेकर मरणपर्यंत व्यक्ति से पृथक् नहीं होती। किन्तु प्रकृत में शास्त्रानुसारी तथा लौकिक विशेष ढंग के धर्म, आचार-विचार से विशिष्ट तत्तद् ब्राह्मणादि समाज ही जाति है। उसके निर्धारित शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करने वाले को उस समाज से पृथक् कर देना ही जाति-बहिष्कार था। यह कभी भी लाचारी हालत में ही होता था। जैसे जब कभी शरीर का कोई

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भाग सड़ जाता है और दुश्चिकित्स्य हो जाता है तभी उसकी शल्यचिकित्सा (आपरेशन) की जाती है। शरीर रक्षा के लिए अनिवार्य अंगविच्छेद का उद्देश्य भी शरीर-रक्षा ही है, अंग-विच्छेद नहीं। सामान्यतया कोई भी अपना अंग-विच्छेद नहीं चाहता। भरसक चिकित्सा कर प्रत्येक अंग की सुरक्षा ही अभीष्ट होती है। ठीक इसी तरह आज जैसे ही नाना प्रकार के पापों के प्रायश्चित सर्वदा थे और आज भी हैं। बलात् धर्मान्तरित तथा पतित लोगों के लिए प्रायश्चित एवं शुद्धि का विधान है ही। उसके न करने पर ही वहिष्कार की बात अपनायी जाती थी। इतिहासकारों ने सोमनाथ मन्दिर-सम्वन्धी जैसा भ्रामक प्रचार किया। जाति-वहिष्कार के सम्वन्ध में भी वैसा ही मिथ्या प्रचार किया है—शास्त्रीय रोटीवन्दी, वेटीबन्दी तथा स्पर्शास्पर्शव्यिवस्था अभिमन्त्रित, रत्नजटित रक्षाबन्धन ही है। ब्राह्मण या हरिजन को यदि अपनी जाति पर गर्व नहीं होता तो हिन्दुत्व पर ही गर्व क्यों होना चाहिए ? व्यष्टि के बिना समष्टि कभी टिक नहीं सकती। जातिभेद के बिना उसका स्वायत्त संयुक्त संघ भी संभव कहाँ ?

हम सब समान देश, समान धर्म, समान शास्त्र, समान ईश्वर को मानने वाले हैं, इसीलिए एक हैं, यही एकात्मभाव है। फिर किन्हीं अवान्तर जाति, अवान्तर धर्म से भिन्न होते हुए भी एक हैं। पर जिनकी शास्त्र, देश, धर्म और ईश्वर किसी में समानता नहीं है, उनमें एकात्मता का अनुभव नहीं होता। भारत को पितृ-भू, पुण्य-भू मानने की शर्त भी हिन्दुत्व के लिए अधूरी है। कई मुसलमान (कादियानी अहमदी) आदि भी भारत को पितृ-भू मानते हैं, साथ ही अपनी मस्जिद को भी पुण्य-भूमि मानते हैं। कई हिन्दू भी नास्तिक होने से भारत को पुण्यभूमि नहीं मानते। जो हिन्दू-नेता कोई शास्त्र या पुण्य मानता ही नहीं, वह भी हिन्दू कैसे रहेगा, क्योंकि शास्त्र के विना पुण्य-पाप का निर्णय होना सम्भव ही नहीं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लेखक का यह कहना सही नहीं है कि "हिन्दुओं की इन जातियों में किसी व्यक्ति द्वारा जाने या अनजाने जातीय आचरण भ्रष्ट हुआ या किसी ने क़िसी दूसरी जाति का पानी पी लिया या किसी से शरीर सम्बन्ध कर लिया, तो ऐसे जातीय धर्म के विपरीत आचरण करने वाले हिन्दू को कड़ी से कड़ी सज़ा दी जाती थी।" क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रियों, वैश्यों तथा अनेक सच्छूद्रों में पानी पीने से जाति-बहिष्कार की प्रथा कभी भी नहीं थी और न आज ही है। इतना ही क्यों, विपरीत भोजन या विवाह हो ज़ाने पर भी प्रायश्चित की व्यवस्था है। प्रायश्चित न स्वीकार करने पर ही पाप की लघुता-गुरुता के अनुसार दण्ड की व्यवस्था थी। जाति-बहिष्कार से राजा प्रजा सभी काँप उठते थे, यह तो उचित ही था। तभी तो दोषों से बचने का प्रयत्न होता था। जिस हिन्दुत्व में सबको सब जगह रोटी-बेटी की छूट है, उसे क्या किसी भी आचरण से आज नियन्त्रित किया जा सकता है। ऐसे लोग वस्तुतः हिन्दू-अहिन्दू किसी में नहीं गिने जा सकते।

श्री सावरकर जी आगे लिखते हैं : 'जातिभेद का यह कुण्ठित अस्त्र मुसलमानों पर धार्मिक प्रत्याक्रमण कर उनका विनाश करने में तनिक भी उपयोगी नहीं हुआ। किन्तु इसके कारण कोटि-कोटि हिन्दुओं का धर्मान्तरण करना सरल हो गया। मुसलमानों को हिन्दू बनाने का कार्य हिन्दुओं के लिए नितान्त असम्भव हो गया। हिन्दुस्थान आने के पूर्व अरब आदि के मुसलमानों ने ईरान, तूरान, मध्य एशिया के राष्ट्रों अफ्रीका, मध्य यूरोप, स्पेन आदि के राष्ट्रों के ईसाइयों, पारसियों आदि ग़ैर मुस्लिमों की तलवार के बल पर। अत्याचार किये एवं बलात् मुसलमान बनाया। परन्तु उन्होंने भी कभी यह स्वीकार नहीं किया कि रोटी का सम्बन्ध होने मात्र से वे उनके सहधर्मी हो गये और उनका मूलधर्म नष्ट हो गया। यद्यपि सैकड़ों वर्षों तक उन पर धर्मान्तरण की तलवार लटकती रही, परन्तु जैसे-जैसे जहाँ मुस्लिम-सत्ता समाप्त हुई, वैसे ही एक झटके । ाथ वे राष्ट्र मुसलमानों को हराकर हरा झण्डा फेंककर अपने पूर्वजों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का धर्म और झण्डा फहरा देते हैं। अतः ईसाई और इजराइली धर्मावलम्बियों को धर्मान्तिरण के बाद मुसलमान बना रखना उनकी शक्ति के बाहर की बात थी। मुस्लिम राज्यशक्ति को शताब्दियों तक अपने सशक्त सैनिकों द्वारा सतर्कतापूर्वक इस बात की देखभाल करनी पड़ती थी कि धर्मान्तिरित लोग मुस्लिम-धर्म के विरुद्ध अथवा अपने धर्म में वापस जाने के लिए कोई षड्यन्त्र या विद्रोह तो नहीं कर रहे हैं!

"इसी प्रकार स्पेन, ग्रीस, सर्विया आदि के ईसाइयों ने कत्लेआम करके मुसलमानों को ईसाई बना लिया।, तो उनको ईसाई बनाये रखने के लिए ईसाई-राज-सत्ताओं को भी सशस्त्र कड़ा पहरा रखना पड़ता था। कारण धर्मान्तिरित मुसलमान यह नहीं मानते थे कि ईसाइयों के साथ सम्बन्ध रखने से उनका स्वधर्म नष्ट हो गया। किन्तु ईसाई राजसत्ता के कमजोर होते ही वे तत्काल विद्रोह कर अपने कन्धे से ईसाई-धर्म का जुआ फेंककर अपना इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते थे और ईसाइयों को मुसलमान बनाकर अत्याचारों का बदला भी लेते थे।"

"उपर्युक्त अनुभवों के आधार पर अरब आदि के नेता इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि हिन्दुओं को मुसलमान बनाकर उन्हें सैकड़ों वर्षों तक इस्लाम-धर्म में पकड़ कर जबरदस्ती रखना पड़ेगा : परन्तु सिन्ध-आक्रमण के बाद उन्हें निश्चय हो गया कि दुनिया के अन्य लोगों की अपेक्षा धर्मनिष्ठ और कट्टर होने के कारण हिन्दुओं को यद्यपि मन से मुसलमान बनाना कठिन है, तो भी वे शरीर से सरलतापूर्वक मुसलमान बनाये जा सकते हैं।"

"ईसवी सन् के प्रथम चार शतकों में सीरियन ईसाइयों ने धर्मान्तरण आरम्भ किया तो उनको विदित हुआ कि एक रोटी टुकड़ा और भातमात्र उनके मुख में ठूस देने से उन्हें स्वधर्म से भ्रष्ट किया जा सकता है। जिस कुएँ से वे पानी पीते हैं, उसमें एक जूठी डबलरोटी का टुकड़ा, बिस्कुट या गोमांस का टुकड़ा डाल देने से गाँव के गाँव जीवनभर

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के लिए धर्मभ्रष्ट हो जाते हैं। उन्हें और उनके कुटुम्ब को फिर हिन्दू-धर्म में लाने की कोई व्यवस्था नहीं है।'

"पुर्तगीज ईसाइयों ने भी हिन्दुओं की छुआछूत और धर्म का भोलापन देख आनन्दित होकर कहा कि 'इन मूर्खं हिन्दुओं के हिन्दुस्थान को देखते-देखते ईसाई बना डालेंगे। इस तरह हिन्दुओं ने शस्त्रों की लड़ाई में अनेक वार सफलतापूर्वक परकीयों के आक्रमण का मुकावला किया, पर धार्मिक-आक्रमण समाप्त करने का उनके पास कोई शस्त्र नहीं था। जिन्हें मुसलमान धर्मभ्रष्ट करते थे। उन्हें हिन्दू अपनी जाति-बहिष्कार की प्रचलित रूढ़ी के आधार पर कठोरतापूर्वक निकाल वाहर कर देते थे। मुसलमानों के पंजाव पहुंचने तक धर्मभ्रष्ट हिन्दुओं की संख्या कई लाख हो गई। उनके बहुत-से लोग अपने धर्म में वापस आना चाहते थे, पर हिन्दुओं के इस जाति-बहिष्कार के कठोर विधान में शुद्ध होकर हिन्दू-धर्म अथवा हिन्दू-समाज में वापस आने का कोई प्रकार अथवा प्रायश्चित था ही नहीं। शुद्धि-बन्दी के ही कारण उनका वापस हिन्दू वनना असम्भव था। इस तरह अपने पैरों में ही हिन्दुओं ने कुल्हाड़ी मार ली।"

"जो स्वार्थसाधन के लिए मुसलमान बनता, उसके लिए तो जाति-बहिष्कार दण्ड ठीक था। स्वेच्छा से धर्मान्तरण करनेवालों के लिए यह दण्ड उचित था। परन्तु जो मुसलमानों के अत्याचारों से त्रस्त, विकल और स्वधर्मग्लानि से आत्म हत्या करने के लिए तत्पर हैं, ऐसे लोगों को जाति से वहिष्कृत कर, माँ-वाप, भाई-वहन, पति-पुत्रादि से जीवनभर 'अपना' कहकर स्वीकार न करना उन्हें और भी विपत्ति में डालना है!

"मुसलिम अत्याचार, धार्मिक आक्रमण और वलात्कार के शिकार हुए निरपराध लोगों को तो जाति-वहिष्कार का दण्ड मिला, पर राक्षसी अपराध करने वाले मुसलमानों को क्या दण्ड मिला! उनका तो इससे बाल भी बाका न हुआ। चोर को छोड़ दिया गया और साहूकार को फांसी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दे दी गई ! उल्टे जाति-बहिष्कार के दण्ड से मुसलमानों के धार्मिक आक्रमण में प्रत्यक्ष और पर्याप्त सहायता पहुंचाई। यहूदी, ईसाई आदि अहिन्दू लोगों को मुसलिम बनाने में मुसलमानों को सौ सौ वर्ष तक सशक्त और कड़ा पहरा रखना पड़ता था, परन्तु लक्षाधिक हिन्दुओं को अत्यन्त क्रूरतापूर्वक मुसलमान बनाने के बाद उन्हें सदैव के लिए केवल एक दिन का ही थोड़ा सा कष्ट करना पड़ता था। एक दिन अन्न-जल-सम्भोग और सहवास करने-मात्र से हिन्दू पूरा मुसलमान हो जाता है। वह अपने पुत्र, पौत्र आदि को भी मुसलमान बनाने का कठिन काम अपना धार्मिक कर्तव्य समझकर करता है। हिन्दुओं की इस बन्दी के कारण ही जो लोग मुसलमानों को चकमा देकर भाग आये थे और पुनः हिन्दू बनने की आशा लगाये थे, उन्हें भी निराश होकर मुसलमान ही बने रहने को बाध्य होना पड़ा। वे मुसलमान रहकर भी भारत में सुखपूर्वक रहते थे। सैकड़ों वर्ष बाद जब मुसलमानों का फिर दिल्ली की ओर आक्रमण हुआ, तो मुसलमानों को अपनी उन गुलाम मुसलिम-टोलियों को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मुसलिम देशों में कोई हिन्दू-टोली सुख-शान्ति से नहीं रह सकती थी। उसे या तो मुसलमान बना लिया जाता या फिर मृत्यु के घाट उतार दिया जाता था !"

आम तौर पर उक्त कथन की पाठकों पर यही प्रतिक्रिया हो सकती है कि 'हिन्दू-शास्त्र, हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू-समाज अदीर्घदर्शी तथा अप्रबुद्ध ही था। किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। श्री सावरकर की दृष्टि में खान-पान, स्पर्शास्पर्श, विवाह-सम्बन्धी प्रतिबन्ध अनुचित हैं। ईसाई मुसलमानों के समान ही हिन्दुओं को भी सबके साथ स्पर्शास्पर्श, विवाह आदि करना चाहिये। परन्तु क्या इससे अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दुओं को विधर्मियों की ओर प्रवृत्त होने का प्रोत्साहन नहीं मिलता ? जब हिन्दू का कोई स्थिर प्रामाणिक शास्त्र नहीं, स्मृतियाँ सामान्य नेताओं के बनाए भ्रान्ति एवं अदूरदर्शितापूर्ण नियम हैं, तो क्यों न प्रगतिशील ईसाई, मुसलिम-धर्म अपना लिया जाय ? भले ही लेखक मुसलमानों की क्रूरता

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का भी वर्णन करते हैं, पर अन्त में वे हिन्दुओं को भी तो वही सब कुछ करने के लिए प्रेरित करते हैं। तभी तो उनके अनुसार गुरुगोविन्द सिंह के लड़कों के साथ मुसलमानों ने जैसा व्यवहार किया था, टीपू के लड़के के साथ पेशवाओं को भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिये था। जैसे मुसलमानों ने हिन्दू औरतों को रखेल बना लिया, वैसे ही हिन्दुओं को भी मुसलिम औरतों को रखेल बना लेना चाहिये। जब लेखक के अनुसार हिन्दू-शास्त्र धर्म तथा समाज में सुधारकर उन्हें ईसाई-मुसलमानों के आदर्शानुसार बनाना है तो बने-बनाये ईसाई, मुसलिम-समाज को ही क्यों न अपना लिया जाय? किन्तु कोई भी समझदार इसे आत्मघात ही समझेगा।

क्या मनुष्य भी कुत्ते को काट खायें?

मनुष्य को कुत्ता काट लेता है। उसे दण्डाघात से दण्डित करना उचित हो सकता है, पर कुत्ते का अनुकरण कर मनुष्य भी उसे काट खाये, यह उचित नहीं। इसी प्रकार मुसलमानों का अनुकरण कर उनके धर्मग्रंथों, धर्म-संस्थानों का अपमान करना, उनकी औरतों को बेइज्जत करना, क्रूरतापूर्वक उनके बच्चों को मारना उचित नहीं कहा जा सकता। हाँ, अन्यायी व्यक्तियों को घोर से घोर दण्ड दिया जा सकता है।

आखिर धर्म है क्या?

यदि कोई स्थिर धर्मग्रन्थ मान्य नहीं है, किसी की रोटी खाने से, किसी का जूठा खाने से, गोमांस खाने से, ईसाई-मुसलमान स्त्रियों को पत्नी बनाने या हिन्दू-स्त्रियों का मुसलिम-ईसाइयों के सम्पर्क से धर्म नष्ट नहीं होता, तो आखिर धर्म क्या है? कहा जाता है कि "धर्म कच्चे सूत का धागा नहीं, छुई-मुई नहीं, जो खाने-पीने या स्त्रियों, पुरुषों के सम्बन्धमात्र से नष्ट हो जाय।" परन्तु यदि धर्म फौलादी लोहा है, लूट-पाट, हत्या या व्यभिचार से किसी तरह भी वह नष्ट नहीं होता तब तो बताना होगा कि आखिर वह धर्म क्या है? फिर मातृ-गमन, भगिनी-गमन, ब्रह्मघात आदि को भी 'अधर्म' कहना कठिन हो जायगा!

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वस्तुतः ईश्वरीय संविधान ही परम धर्ममूल प्रसिद्ध है। गीता में तो भगवान कृष्ण स्पष्ट शब्दों से यही कहते हैं कि जो शास्त्रविधि का उल्लघन कर कुछ भी मनमानी करता है, उसे सुख, सिद्धि परागति कुछ भी नहीं मिलती।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

अतः कार्य-अकार्य की व्यवस्था में एकमात्र शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र मनमानी किसी व्यक्ति या समाज का बनाना नहीं, किन्तु अनादि वेद ही शास्त्र है। संसार के सर्वप्रथम संविधान-निर्माता मनु भी कहते हैं कि "जो धर्म जानना चाहता, उसके लिए परम प्रमाण श्रुति ही है।"

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।

साथ ही मनु के अनुसार श्रुति-अविरुद्ध स्मृति और श्रुति-स्मृति अविरुद्ध सदाचार एवं इन सबसे अविरुद्ध आत्मतुष्टि भी धर्म में प्रमाण है:

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतत् चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

इस दृष्टि से तो श्रुत्यादि के अनुसार देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि की सभी चेष्ठाएँ (हलचलें) धर्म हैं और श्रुत्यादिविरुद्ध देहादि की सभी चेष्टायें अधर्म: अतः खाना, सोना, रोना, डरना, मरना, सन्तान उत्पन्न करना, पूजा-पाठ, जप, अग्निहोत्र ज्योतिष्टोमादि सभी शास्त्रानुकूल होने से धर्म होते हैं। तद्विपरीत अधर्म ठहरते हैं। शास्त्रानुसार धर्माचरण से ईश्वर और धर्म की सहायता मिलती है, समाज और लोक की भी उसमें सहानुभूति और सहायता मिलती है।

ईसाई, मुसलमानों को भी अपने धर्मग्रन्थ का ही सहारा है। लेकिन इधर सुधारक हिन्दू किसी भी शास्त्र या धर्म पर आस्था न रखकर मनमानी तोड़-फोड़ कर शास्त्र एवं समाज को अपनी बुद्धि के अनुसार बनाना चाहता है तो उधर ईसाई, मुसलमान अपनी बाइबिल, कुरान, हदीस पर दृढ़ आस्था रखते हैं, उनमें वे रद्दोबदल की बात भी नहीं सोचते।

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके अपमान से उत्तेजित होकर वड़ा से वड़ा वलिदान कर सकते हैं। शास्त्र-धर्म का अविश्वासी, ढुलमुल सुधारक कभी भी उनका मुकाबला नहीं कर सकता। किन्तु जो वैदिक डेढ़-दो हजार साल के वने बाइबिल, कुरान से कोटिगुणित अपने अनादि-अपौरुषेय ईश्वरी वेदों एवं तदनुसारी आर्ष-ग्रन्थों में सुदृढ़ विश्वास रखकर अपने सामाजिक, धार्मिक नियमों का पालन करता है, वही अन्त में विजयी होता है। कभी सूर्य भी कुहरे से ढँक जाते हैं, पर अन्त में कुहरे का तमस्तोम सूर्य के सामने पराज़ित ही होता है।

बौद्ध ही मुसलमान बने !

श्री सावरकर, श्री गोलवलकर आदि सुधारक यह तो मानते ही हैं कि शास्त्र, धर्म जाति पाँति में विश्वास न रखने वाले बौद्ध ही मुसल्मान वने। अतएव भारत की पूर्वी ओर पश्चिमी सीमा पर वौद्धों की ही वड़ी से वड़ी संख्या थी। उनका सुस्थिर धर्म तथा जाति में विश्वास नहीं था। वे ही बिना अधिक प्रतिरोध के मुसलमान वने। दिल्ली, लखनऊ, उत्तर प्रदेश पर बादशाहों, सुलतानों, नवाबों का सदियों तक शासन रहा। वहाँ विविध अत्याचार होने पर भी वेदादि-शास्त्रों तथा जाति-पाँति में विश्वास रखने वाले लोगों ने तो गुरुगोविन्द सिंह के वालक वीर हकीकत आदि के समान हँसते-हँसते प्राण दे दिये, पर धर्म नष्ट नहीं होने दिया। क्या श्री सावरकर आदि सुधारकों की नीति के अनुसार शिखा के दो बाल न देकर सिर देने की भी हिम्मत रखनेवाला कोई व्यक्ति पैदा हो सकता है? जिसके यहाँ शास्त्र का, शिखा का कोई महत्त्व नहीं; खान-पान, आचार-विचार का कोई महत्त्व नहीं, वह किस धर्म के लिए प्राणों को खतरे में डालने को प्रस्तुत होगा? जहाँ कहीं धोखे से या वलात्कार से शास्त्र-विश्वासी जातिवादी को भ्रष्ट किया जाता है, वहाँ वे जातिवादी धर्म-विश्वासी स्वेच्छापूर्वक कठोर से कठोर प्रायश्चित करने को प्रस्तुत होते हैं। वह स्वयं ही अपने सम्बन्ध से अपनी जाति को अपवित्र नहीं करना चाहते। भारत में आज भीं यह पद्धति है कि यदि किसी से भूलकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गौ के वछड़े आदि की डण्डा मारने से मृत्यु हो जाय, तो वह स्वयं ही पण्डितों को पूछकर प्रायश्चित करता रहा है, और तब तक समाज से, कुटुम्ब से पृथक् रहता है। सूतक-पातक में ब्राह्मण आदि भी स्वयं को समाज से पृथक् रखते हैं।

बलात् भ्रष्ट होने पर प्रायश्चित आवश्यक :

यदि किसी शत्रु ने वलात् हमारी देह से मलिन विष्ठा। मांस आदि का संसर्ग कर दिया तो उसका प्रक्षालनादि द्वारा शुद्ध करना आवश्यक होता ही है। इसी तरह वलात् धर्मभ्रष्ट किये जाने पर भी शास्त्रीय प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। धर्मभ्रष्ट का कोई प्रायश्चित नहीं, यह कहना गलत है। धर्मशास्त्रों में इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक किये गये सभी पापों का प्रायश्चित है। हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में गोमांसभक्षण सुरापान, ब्रह्मवध जैसे महापातकों के भी प्रायश्चित हैं। फिर 'इच्छा या अनिच्छापूर्वक मुसलमान बन जाने या उसकी रोटी खाने, पानी पीने तथा यौन सम्बन्ध करने का हिन्दू-धर्म में कोई प्रायश्चित नहीं, यह कहना जनता की आँखों में धूल झोकना है। अन्त में तो भगवन्नाम, भगवद्भक्ति, भगवत्तत्त्व ज्ञान, गंगास्नान सभी ज्ञात-अज्ञात पापों के सर्वोत्कृष्ट प्रायश्चित हैं ही। भगवान् के नाम में जितनी पाप मिटाने की शक्ति है, पापी प्राणी उतना पाप कर ही नहीं सकता :

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

प्रायश्चित से जातिग्राह्यता भी :

धर्मभ्रष्ट होने, ईसाई, मुसलमान वनने पर शीघ्र ही शास्त्रोक्त प्रायश्चित कर लेने पर जातिग्राह्यता भी हो जाती है। विलम्ब होने पर या म्लेच्छ स्त्री-पुरुषों से अधिक दिन यौन-सम्बन्ध रहने तथा संतान होने पर भी प्रायश्चित है। प्रायश्चित कर लेने पर पारलौकिक पूर्णशुद्धि हो जाती है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जो पहले था, वही फिर भी रहेगा। वह शिखादि हिन्दू-चिह्नों को धारण कर सकता है। मात्र जाति तथा आनुवंशिक रक्तशुद्धि के लिए उसकी पृथक् श्रेणी रहेगी। उसी श्रेणी में उसके विवाह, खान-पान आदि चल सकते हैं। कहा जा चुका है कि जाति नित्य होती है, उसका कभी नाश नहीं होता। जैसे उत्तम-मध्यम सिंह सिंह ही होता है वैसे ही उत्तम-अधम ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि ब्राह्मणादि ही रहेंगे। हिन्दू-धर्म में जब प्रतिलोभ संकर चाण्डालादि को भी स्थान है, तो कृतप्रायश्चित धर्मान्तरित हिन्दू को स्थान क्यों नहीं। हिन्दू-समाज में अनेक श्रेणियाँ हैं। धर्मान्तरित ब्राह्मणादि प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो जाते हैं।

इतना ही नहीं, जन्मना मुसलमान ईसाई, अंग्रेज, यहूदी आदि की यदि विचार-पूर्वक स्वेच्छा से हिन्दू होना चाहें, तोउनकी भी हिन्दू-समाज में एक श्रेणी हो सकती है।

'धर्मभ्रष्टों को पुनः शुद्धि नहीं' :
मिथ्या प्रचार

जैसे सोमनाथ-मन्दिर के पुजारियों के सम्बन्ध में विरोधी विदेशी तथा अनभिज्ञ भारतीयों ने अण्ट-सण्ट प्रचार कर रखा है, वैसे ही 'हिन्दुओं में धर्मभ्रष्टों की पुनः शुद्धि नहीं हो सकती' यह भी मिथ्या-प्रचार ही है। जैसे बौद्धों की शुद्धि हुई थी, वैसे ही धर्मान्तरित होकर मुसलमान बननेवाले बौद्धों की भी शुद्धि हो सकती थी। उन्हें भी हिन्दू-समाज में स्थान मिल सकता था। पर जो लोग स्वेच्छा से हिन्दू-बनना नहीं चाहते थे या समाज द्वारा निर्धारित जातिभेद स्वीकार करना नहीं चाहुते थे वे ही मुसलमान बने रहे। जो लोग छल-छद्म से ऊपर से हिन्दू बनकर हिन्दू-लड़कियों से विवाह कर (रक्त-सांकर्य पैदा कर), हिन्दू-समाज को दूषित कर, पुनः मुसलमान हो जाने का इरादा रखते हैं 'अब्दुल्ला' से 'रामपाल' बनकर कुछ हिन्दू-लड़कियों को साथ लेकर पुनः 'अब्दुला' बनने की बात सोचते हैं, उन्हें हिन्दू-समाज में बिल्कुल स्थान नहीं है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समाजरक्षार्थ कठोर अनुशासन :

कहा जा चुका है कि शास्त्रानुसार खान-पान, आचार-विचार सब धर्म हैं। अतः रोटी-बेटी का कड़ा नियम आवश्यक है। इसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यदि आपस में भी रोटी-बेटी का व्यवहार करते हैं, तो उससे सांकर्य फैलता ही है। धर्मशास्त्रानुसार पूर्वयुगों में ब्राह्मणादि अपने से निम्नवर्गों की लड़की से विवाह करने तथा आंशिक भोजन सम्बन्ध से भी पतित नहीं होते थे। उनकी सन्तानें 'अनुलोम-संकर' कहलाती थीं। किन्तु विपरीत क्रम से शूद्रादि अपने से उत्कृष्ट वर्णों के साथ विवाह करसे पर पतित होते थे और उनकी सन्ताने, प्रतिलोम संकर और अधिक निन्द्य मानी जाती थीं।

यदि वैश्यजाति का कोई व्यक्ति अपने से छोटी जाति से रोटी-बेटी सम्बन्ध कर ले तो उसे जाति से बहिष्कृत होने पर भी किसी पतित मानी जानेवाली जाति के साथ होकर रोटी-बेटी का सम्बन्ध करना पड़ता है। उनकी स्वतंत्र जाति बन जाती थी। वह भी हिन्दू-जाति का अंग रहता है और हिन्दू-समाज से बहिष्कृत नहीं होता। यह कहना गलत है कि 'ऐसे वैश्य आदि को जीवनभर मुसलमान बना रहना पड़ता है, अथवा उसमें और मुसलमान में कोई अन्तर नहीं माना जाता, इसलिए जाति-बहिष्कृत होना समान ही है', क्योंकि उक्त बातें प्रमाण शून्य हैं। पतित हिन्दू भी गंगास्नान करता है, रामनाम लेता है, रामायण-भागवत सुनता, गोहत्या से बचता और गोपूजा करता है। अतः ऊसका पतित होना या मुसलमान बन जाना दोनों बराबर नहीं। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य अपने से निम्नजाति से विवाह आदि करने पर अपनी जाति से खान-पान, विवाह-सम्बन्ध न होने पर भी, वे सर्वथा जातिच्युत नहीं होते, किन्तु पतित ब्राह्मण आदि हो जाते हैं। यह पतन भी अपेक्षाकृत ही होता है। अनुलोम संकरों को तो मातृतुल्य जाति का मानकर उन्हें उपनयन, वेदाध्ययन का भी अधिकार प्राप्त होता है, फिर उनको मुसलमान के तुल्य समझना कितना विरुद्ध है? रोटी-बेटीबन्दी मुसलमानों

CC0. In Public Domain. Kritikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के प्रति अस्त्ररूप में प्रयुक्त नहीं किया जाता। वह तो आनुवंशिक रक्त-शुद्धि, वर्णशुद्धि की दृष्टि से प्रयुक्त है और सफल ही होता है। शुद्धिवन्दी का आरोप तो सर्वथा गलत ही है, क्योंकि पारलौकिक शुद्धि तो बड़े से बड़े पापों में भी होती है, व्यवहार्यता में अवश्य कुछ सीमा तक प्रतिवन्ध रहता है।

इतना ही क्यों, आधुनिक लोग तो यह भी कहते हैं कि 'अस्पृश्यता या ऊँच-नीच के कारण ही निम्नश्रेणी के हिन्दू मुसलमान हो गये, क्योंकि वे हिन्दू-समाज में अपमानित होकर नहीं रहना चाहते। मुसलिम आदि समाज में उनको वरावरी का दर्जा मिलता है।' किन्तु यह सब कथन प्रतारणामात्र है। कारण, आज भी हिन्दू-समाज में चमार, पासी, धोवी आदि वहुत-सी जातियाँ हैं जिनका ब्राह्मण आदि से रोटी-वेटी-सम्वन्ध नहीं होता। तो भी वे अपने आपको अपमानित नहीं समझती। वे मुसलमान वनने की कल्पना भी नहीं करतीं और मुसलमान का पानी पीने से भी धर्महानि समझती हैं। प्रत्युत ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा पण्डित कहे जानेवाले लोग ही, जिनको अस्पृश्य नहीं कहा जाता, धन या स्त्री के प्रलोभन में आकर ईसाई-मुसलमान वनते हैं।

इस तरह 'धर्मभ्रष्ट, धर्मान्तरित मुसलमान, ईसाई वने हिन्दुओं की शुद्धि नहीं होती, उनको हिन्दू-समाज में नहीं लिया जा सकता; इसलिए मुसलमान-ईसाइयों की संख्या बढ़ी हैं' आदि कल्पनाएँ सर्वथा निराधार, मिथ्या तथा दुष्टप्रचार मात्र है। जाति-पाँति न माननेवाले, वेदादि-शास्त्रों में विश्वास न रखनेवाले हिन्दू लोग ही अधिकांश मुसलमान वने हैं, ईसाई वनने की प्रेरणा में अधिकतर धन, स्त्री, नौकरी आदि का प्रलोभन ही था। कुँआ या तालाव से पानी पीने या उनमें रोटी डालकर उनका पानी पीने से गाँव का गाँव भ्रष्ट होकर ईसाई-मुसलमान हो गये, यह कल्पना भी वैदिक सनातन धर्म के विरुद्ध सुनियोजित प्रचार है। कारण शास्त्र वे ही अव हैं और वे ही तव भी थे। इस समय की अपेक्षा उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समय शास्त्रमर्मज्ञ अधिक थे। ऐसे धोखे से होनेवाले धर्मभ्रश का प्रायश्चित जब आज है तो तब क्यों न रहा होगा ? हिन्दू-समाज के भीतर विभिन्न श्रेणियों के रूप में रहने पर तो कभी भी प्रतिबन्ध था ही नहीं।

ईसाई, मुसलमान, यहूदी आदिकों के जातीय आचार-विचार समान हैं, अतः उनमें एक दूसरे की रोटी खाने, पीने तथा यौनसम्बन्ध से पतन की कल्पना नहीं होती। हिन्दुओं में शैव, वैष्णव आदि धर्मों में भी खान-पान, यौन-सम्बन्ध से पतन नहीं माना जाता, क्योंकि उनमें उतनी विषमता नहीं है। किन्तु सर्वथा विभिन्न जाति के ईसाई, मुसलमान आदि के साथ—जिनका वे रोक-टोक भाई-बहन तथा विमाता से भी यौन-सम्बन्ध होता है, गोमांस-भक्षण जिनमें साधारण बात है—सम्बन्ध का अर्थ है हिन्दू-रक्त, हिन्दू-धर्म और मान्यताओं की पूर्ण समाप्ति ! हिन्दू के यहाँ जिस मिट्टी के पात्र से शौच जाते हैं, उसे ही पीने के काम में नहीं लिया जा सकता। किन्तु मुसलमान आदि के यहाँ ऐसा कोई विचार नहीं है। अशुचि मृत्तिकापात्र से पानी पीनेवाले मृत्तिकापात्र को मिला देने से पानीं पीनेवाला पात्र ही अशुद्ध होगा, अशुद्ध पात्र का क्या बिगड़ेगा ? परन्तु आचारशून्य लोगों को यह सामान्य-सी बात भी समझ में नहीं आती।

सद्गुण विकृति :

चौथे अध्याय में श्री सावरकर जी कहते हैं कि "परोपकार, दया, अहिंसा, परधर्म-सहिष्णुता, शरणागत-वत्सलता, शत्रु पर उपकार करना, परस्त्री का अपहरण न करना, शरणागत शत्रु को क्षमा करना आदि का गलत पात्र और समय के अनुसार उपयोग दुर्गुण ही है। संसार में सत्त्व, रज, तम तीनों गुण हैं। सारा संसार सत् के धागे से नहीं बुना है। जो विजेता बनकर जीवित रहना चाहता है, कम से कम जो अन्यायियों, अत्याचारियों से पराजित होना नहीं चाहता, उसे सत्त्व, रज, तम तीनों परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए त्रिशूलवत् साधनों का प्रयोग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करना चाहिए। हिन्दू-मुसलिम-युद्ध में इन गुणों का बिपरीत प्रयोग हुआ है। गीता के मुख्य मर्म पात्रापात्र का विवेक भी खो दिया गया था।

"शरणागत को जीवन-दान देना एक सद्‌गुण है, इस कारण मुहम्मद गोरी और नजीब खाँ को हिन्दू-राजाओं के हाथ आने के बाद भी जीवित छोड़ दिया गया। भूखे को अन्न देना, प्यासे को पानी पिलाना एक सद्‌गुण है, इस पाठ को रटकर नागों और दुष्ट साँपों को दूध पिलाना आरम्भ कर दिया गया। वे दुष्ट राक्षस, मुसलमान हमारे पवित्र मन्दिरों का विध्वंस करते रहे। सोमनाथ की मूर्तियाँ तोड़ते रहे, फिर भी साधु-संत यही उपदेश देते रहे कि 'पराये ने दुःख दिया, तो बदला न लो, भोगो, ईश्वर उसे दण्ड देगा—यह सोचकर चुप बैठो।' इसी कारण अनुकूल परिस्थिति आने पर भी हिन्दुओं ने मस्जिदों का एक पत्थर भी नहीं तोड़ा।

आगे लेखक प्रभावशाली शब्दों में लिखता है; "जिन सद्‌गुणों के कारण दुराचार और पंच महापातकों से भी भयानक पाप होते हों, उनकी अपेक्षा ग्रन्थों में वर्णित महान दुर्गुण भी मानव एवं राष्ट्र-हित के घातक नहीं कहे जा सकते। उन्हें कदापि धिक्कारा नहीं जा सकता। विवेकशून्य, बुद्धिभ्रष्ट मनुष्य ऐसे गुणों को सद्‌गुण समझते हैं और धर्म समझकर हठपूर्वक उनका व्यवहार करते हैं। उनका व्यक्तिशः, राष्ट्रशः विनाश अटल है। उन्हें कोई बचा नहीं सकता। ये सड़े गुण सड़ियल विषैले खाद्यान्न के समान प्राणघातक होते हैं।

"परधर्म-सहिष्णुता भी तभी सद्‌गुण है, जब दूसरा धर्म भी हमारे धर्म के साथ सहिष्णुता का व्यवहार करें। पर जो काफिरों का उच्छेद करना ही अपना मजहब मानता हो, उन ईसाई-मुसलमानों के प्रति तो उनके असहिष्णु कृत्य का बदला लेने के लिए, अत्याचार का प्रतिशोध लेनेवाली संक्रुद्ध असहिष्णुता ही सच्चा सद्‌गुण है। मुसलिम आक्रान्ताओं ने मथुरा एवं काशी के मन्दिरों को ध्वस्त किया, अत्यन्त पूज्य पवित्र

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Naraifgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रामेश्वर तक की मूर्तियों को आगरा, दिल्ली ले जाकर उल्टी कर अपने महलों की सीढ़ियों में चुनवा दिया। इतना ही नहीं, उन पवित्र मूर्तियों का उपयोग मल-मूत्रोत्सर्ग करने के स्थानों पर किया। ऐसे अनेक उत्पातों को ही जिन्होंने अपना धर्म माना, उनके साथ सहिष्णुता का व्यवहार सद्‌गुण-विकृति ही है और वह नारकीय पाप के समान है।

"इसी पापाचार को पुण्य समझकर हिन्दुओं ने कईवार मुसलिम राज्य सत्ताओं, को ध्वस्तकर राजसत्ता प्राप्त करने पर भी काशी, मथुरा, रामेश्वर आदि के द्वारा मन्दिरों के स्थान पर बनायी मस्जिदों को तोड़कर उनके अवशेषों को रास्ते के कंकड़ों-पत्थरों से मिलाकर उन्हें सद्‌गति नहीं दी।

"वहुत हुआ तो गिराये गये मन्दिरों को फिर से बना लिया। हिन्दू-शासकों ने आक्रामकों द्वारा बनायी गयी मस्जिदों के लिए स्थायी आय की सम्पत्ति देकर उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व भी ग्रहण किया। महमूद गजनवी द्वारा ध्वस्त सोमनाथ के मन्दिर का हिन्दुओं द्वारा पुनरुद्धार किया गया, पुनः आक्रमण कर मुसलमानों ने उसे तोड़ दिया। इन्हीं संघर्षों के वीच एक हिन्दू-राजा की सत्ता पुनःस्थापित हुई, मन्दिर का पुनः निर्माण हुआ। अरब के जहाजी यात्री मुसलमानों के नीति से मस्जिद के लिए जमीन माँगी। उचित तो यह था कि आस-पास की सब मस्जिदें तोड़ दी जातीं, अरबों का आना-जाना बन्द कर दिया जाता। परन्तु सौजन्यपूर्ण व्यवहार करते हुए राजा ने सहर्ष जमीन दे दी, सोमनाथ-मन्दिर के सामने उन्होंने फिर से मस्जिद बना ली। राजा ने उसके वार्षिक व्यय की व्यवस्था भी कर दी। इस परधर्म-सहिष्णुता का फल थोड़े दिनों वाद मिला। अलाउद्दीन आदि आक्रमण-कारियों ने गुजरात पर आक्रमणकर हिन्दू-ललनाओं के साथ बलात्कार, हिन्दूओं का कत्ले-आम और मन्दिरों का विध्वंस किया। उनकी बर्वर सेनाओं ने सोमनाथ-मन्दिर को भी पुनः छिन्न-भिन्न कर डाला। जो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुर्गति महमूद गज़नवी ने की थी, उससे भी अधिक दुर्गति इसने की। श्री सोमनाथ की मूर्त्ति तथा गर्भगृह की शिलाएँ दिल्ली ले जाकर मस्जिद की सीढ़ियों में चुनवा दीं।

"इस तरह मुसलमानों के उक्त काल में इसी सद्गुण-विकृति के कारण काश्मीर से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण देश में मन्दिर-ध्वंस, बलात्कार, कत्ले-आम, धर्मान्तरण आदि हुए। न्याय-अन्याय, स्वधर्म-परधर्म, उदारता-असंकुचितता आदि गुणों को स्वयमेव सद्गुण समझने की भ्रान्ति में हिन्दू फँस गया। गुजरात के अन्हिलवाड़ा प्रदेश का राजा सिद्धराज बहुत ही पराक्रमी था। उसमें न्याय-अन्याय का प्रयाप्त विवेक था। एकवार कंभात में हिन्दू-मुसलिम झगड़ा हुआ। मुहम्मद औफी लेखक ने इसके संदर्भ में 'आम जवानी उल्हिनकायत' पुस्तक में लिखा है कि वाद काफिर हिन्दुओं ने आक्रमण कर ८० मुसलमानों को मार दिया, मस्जिद की मीनार गिरा दीं, मस्जिदें ज़ला दीं। इमाम खती अली ने हिन्दू-राजा की प्रशंसा में कविता लिखी जिसमें हिन्दुओं के अत्याचारों का वर्णन किया गया था और रक्षा की माँग की गयी। राजा ने उदारतापूर्वक न्याय किया।' राजा ने राजधर्म की पुराणपन्थी बातें रट रखीं थीं। इन वाक्यों का देश, काल, पात्र आदि का विवेक रखते हुए कैसे अर्थ लगाना चाहिए, यह गुरुमन्त्र वतानेवाले चाणक्य-सूत्र उनकी सात पीढ़ियों तक को याद न थे। उसने हिन्दुओं को कठोर दण्ड दिया और मुसलमानों को एक लाख बलोत्रा सिक्कों की भारी धनराशि देकर गिरी मस्ज़िद की मीनार को वनवा दिया। वह राजा शिवभक्त था, सोमनाथ की पैदल यात्रा करता था। सोमनाथ जैसे अनेक मन्दिरों को विध्वंस करनेवालों की गिरी मस्ज़िदों को वनवाकर संरक्षण प्रदान किया किन्तु महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी आदि के राज्य में कोई अपने मन्दिरों के सम्बन्ध में एक अक्षर भी उच्चारण करने का साहस नहीं करता था। उस क्षेत्र के हिन्दू नर-नारियों को गुलाम बनाकर मध्यएशिया, काबुल, गंधार आदि में वेचा जाता था। परन्तु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परधर्मसहिष्णुता के कारण हिन्दू-राजाओं के राज्य में विधर्मी मुसलमानों की बड़ी-बड़ी वस्तियाँ आदर सम्मान के साथ रहती थीं। शरणार्थी बनकर निवास करनेवाले कपटी मुसलमान किसी मुसलिम-शक्ति द्वारा हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने पर विद्रोही बनकर, उनका साथ देकर हिन्दू-राजा को नष्ट करने की जी तोड़ कोशिश करते थे। हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के कारण हिन्दुओं की संख्या क्षीण और मुसलिमों की संख्या वृद्धिगत हुई।

मुसलमानों के इन दुष्कृत्यों को वर्बरता, धर्मान्धता एवं पागलपन कहकर नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता। किन्तु वह संख्या बढ़ने की योजना थीं। गायों के झुण्ड में साँड़ों की संख्या यदि गायों से अधिक होती है तो संख्या तेजी से नहीं बढ़ती। यदि गायों की संख्या साँड़ों से बहुत अधिक होती हैं तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी संख्या बढ़ती ही जायगी। इसी सृष्टि क्रम के अनुसार यह नियम ममुष्यों में लागू है। वन्य मनुष्यों की टोलियों में भी यही नियम चलता था। अफ्रीका की विद्यमान वन्य मानव-टोलियों में विजयी टोली पराजित पक्ष के केवल पुरुषों की हत्या करती है। विजय के बाद टोलियों का बँटवारा आपस में कर लेते हैं। अपना संख्यावल बढ़ाना धर्म समझा जाता है। नागा लोगों में यदि स्त्री लड़ने को आगे बढ़ती है, तो उसे विषैले वाण मारकर तुरन्त समाप्त कर दिया जाता है। वे कहते हैं कि पकड़ में न आनेवाली स्त्री का हनना करना उस टोली के पाँच पुरुषों के मारने के बराबर है। उनकी जनसंख्या को हानि पहुंचाना है। इसी भाँति मुसलमानों में काफिरों पर विजय पाने के बाद वसूल किये जानेवाले हरजाने में आधा अंश पैसे का और आधा स्त्रियों का होता था और ईमानदार सिपाहियों में उन्हें दस-दस के नियम से बाँट दिया जाता था। वहाँ संख्या बढ़ानेवाले सेनापतियों को 'गाजी' की उपाधि दी जाती थी। रावण ने भी कहा था :

राक्षसानामयं धर्मः परदाराभिमर्षणम् ।

अर्थात् दूसरा की स्त्रियों का अपहरणकर उनके साथ बलात्कार करना हम राक्षसों का परम धर्म है। इसी रावणी निर्लज्जता और धर्मान्धता के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारण मुसलमान सिपाहियों से लेकर सुलतान तक स्त्रियों में बँटवारे में शामिल होते थे। इसे वे इस्लाम का पवित्र धर्म मानते थे। मुसलिम स्त्री-समाज भी हिन्दू-स्त्रियों का शील नष्ट करने में सहायक होता था। शान्तिपूर्ण स्थिति में भी वे हिन्दू-स्त्रियों को फँसने की चेष्टा करती थीं।

"शत्रुओं की महिलाओं के प्रति हिन्दुओं के सौजन्य के कारण स्वयं मुसलिम स्त्रियों को कोई भय नहीं था; क्योंकि हिन्दुओं की विजय होने पर भी उन पर अत्याचार नहीं होता था। हिन्दू विजयी होकर विजित स्त्रियों को ससम्मान शत्रुओं के शिविर में भेज देते थे। छत्रपति शिवाजी द्वारा कल्याण के सूबेदार की वधू को सालंकार उसके पति के पास वापस पहुँचाने और चिमणाजी अप्पा द्वारा पूर्तगीज-किला विजित करने के पश्चात् उनकी स्त्रियों को ससम्मान भेजने की घटनाओं का वर्णन आज के हिन्दू बड़े गर्व से करते हैं। परन्तु आश्चर्य है कि महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी और अलाउद्दीन खिलजी आदि सुलतानों द्वारा दाहिर की राजकन्याओं, कर्णावती के राजा की कमलदेवी और उसकी सुन्दर राजकुमारी देवलदेवी आदि सहस्रों हिन्दू-राजकुमारियों के साथ किये गये बलात्कार और लाखों स्त्रियों की प्रतिष्ठा की याद उन्हें नहीं आती। यदि वैसा ही अत्याचार, बलात्कार उनपर किया जाता तो उन लोगों के मन में दहशत बैठ जाती और वे भी आगे से वैसा अत्याचार करने में हिचकते। लेकिन सद्गुण-विकृति के वशीभूत शिवाजी आदिकों ने मुसलिम स्त्रियों के साथ वैसा बर्ताव नहीं किया। 'मातृवत् परदारेषु' (परस्त्री मातृवत्) के धर्मघातक सूत्र के कारण मुसलिम स्त्रियों द्वारा लाखों स्त्रियों के त्रस्त किये जाने के बाद भी उन्हें दण्ड नहीं दिया जा सका। हिन्दुओं को मुसलिम स्त्रियों के सम्बन्ध से पाप होने की मूर्खता पूर्ण धारणा बनी थी। अतः मुसलमानों को रत्तीमात्र भी भय नहीं था कि हमारी स्त्रियों को भी हिन्दू छीन लेंगे और हिन्दू बना लेंगे। यदि हिन्दू-विजय के साथ मुसलिम स्त्रियों को आत्मसात् कर लिया जाता, तो उन्हें भी इस बात का भय होता कि हिन्दुओं की विजय होने पर हमारी स्त्रियों की भी यही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुर्गति होगी। इससे लक्षावधि हिन्दू माता-बहनों, कन्याओं पर अत्याचार रुक जाता !

"शत्रु-स्त्री के आदर के कारण हिन्दुओं की अधिकाधिक दुर्दशा हुई है। हिन्दुओं ने सहस्रों मुसलिम स्त्रियों को सादर उनके खेमों में पहुंचा दिया, पर इसका उनपर कोई असर नहीं पड़ा। उन्होंने कोई उपकार नहीं माना, प्रत्युत उसका मखौल उड़ाया। इन्होंने इसे हिन्दुओं की कायरता और नामर्दी समझा और यह समझा कि हमारी स्त्रियों की ओर तिरछी नजर से देखने का साहस ही हिन्दुओं में नहीं है।

हमारे पूर्वजों का उदाहरण :

श्री सावरकर लिखते हैं : "चाहे जो भी काटने दौड़ें, नाग या नागिन, उसे कुचल ही डालना चाहिए। तभी तो प्रभु रामचन्द्र ने ऋषियों का यज्ञभंग करनेवाली ताड़का को मार गिराया। लक्ष्मण ने सीता को खाने के लिए प्रवृत्त शूर्णपखी के नाक-कान काटकर भगा दिया था। आर्यों की सहस्र ललनाओं का हरण करने वाले नरकासुर को मारकर, बन्दिनी आर्य-ललनाओं को संकटमुक्त कर सामाजिक बदला भी लिया। ऐसी अविवेकी विचारधारा के अनुसार कृष्ण ने उन्हें असुरों को वापस नहीं किया। पौराणिक-काल के बाद भी हमारे विजेता यवन, शक, हूण आदि परकीय राजाओं, सेनापतियों को पराजित करके उनकी कन्याओं से खुल्लमखुल्ला विवाह कर लिया करते थे।

वस्तुतः उचित यही था कि मुस्लिम राजसत्ता उखाड़ फेंकने के बाद मुस्लिम आक्रमणकारियों के ग्रामों, नगरों को मुस्लिमविहीन बनाकर उनका कत्लेआम कर उनके अत्याचारों का बदला लेते। यदि वैसा किया होता तो शुद्धिबन्दी का आचरण भी इस मार्ग में बाधक न बनता। प्रश्न तो केवल मुसलमानों को मिटा देने का था। "परन्तु इस काम में सब धर्म समान हैं, राम-रहीम एक ही हैं यही रूढ़ी बाधक बनी। हिन्दू-मुस्लिम युद्धों में यही भयानक पराजय का कारण बना !"

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वस्तुतः उक्त विचारों में ग्राह्य, अग्राह्य दोनों अंशों का विचित्र विमिश्रण है। धर्म-अधर्म, सद्गुण-दुर्गुण की परख में शास्त्रों का ही प्राधान्य होता है। लेखक ने बार-बार सोमनाथ की मूर्ति और रामेश्वर आदि में श्रद्धा प्रकट की है, उन्हें परम-पूज्य, परम-पवित्र भी कहा और माना है। पर यह तो शास्त्रों के बल पर ही सिद्ध है। शास्त्र और परम्परा की मान्यता त्याज्य हो, तो फिर अमुक-असुक पाषाणमयी मुर्तियों की पूज्यता और पवित्रता का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः जैसे उन्हीं शास्त्रों को प्रमाण मानकर काष्टमयी, धातुमयी, पाषाणमयी मूर्तियों में देवता का आवाहन-प्रतिष्ठापन कर हिन्दू उनकी पूजा करते हैं, उन्हें परम पूज्य और पवित्र मानते हैं, उनके अपमान में अपने धर्म तथा राष्ट्र का अपमान समझते हैं और उसका बदला लेने के लिए उत्तेजित होते हैं, जिसको सोमनाथ, रामेश्वरम् तथा काशी-विश्वनाथ, अयोध्या, मथुरा के राम तथा कृष्ण के मन्दिरों एवं मूर्तियों के अपमान में भी उत्तेजना नहीं, उसे निस्तेज तथा कायर कहा जाता है, उन्हीं शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट मन्दिर-मर्यादा तथा जाति-पाँति तथा खान-पान तथा यौन-सम्बन्ध-विवेक भी मानना ही चाहिए। मनमानी खान-पान तथा यौन-सम्बन्ध से तो रक्त पवित्र न होने के कारण जाति-सांकर्य भी उत्पन्न होगा ही।

हिन्दू-जाति धर्ममूलक :

वस्तुतः श्रुतियों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातियाँ तो गो, अश्व, शूकर आदि जातियों के समान नित्य जातियाँ हैं। उनका विनाश शरीर-स्थितिपर्यन्त होता ही नहीं। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम आदि जातियाँ तो धर्म के ही आधार पर निर्धारित होती हैं। अतः इस्लाम-धर्म ग्रहण कर लेने पर किसी ब्राह्मण को भी हिन्दू नहीं कहा जाता। अंग्रेज, चीनी, फ्रेंच भी इस्लाम-धर्म ग्रहण करने पर मुसलमान ही होगा। इसी तरह कोई अरबी मुसलमान भी ईसाई धर्मग्रहण करने पर ईसाई हो जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुधारक हिन्दू तो किसी अंग्रेज, इटालियन, फ्रैंच या अरबी को हिन्दू बनाकर उसे हिन्दू मानने लगता है। जैसे ईसाई तथा मुसलमानों ने ईसाई-धर्म या इसलाम-धर्म का आधार बाइबिल या कुरान माना है, वैसे ही हिन्दू-धर्म का आधार अनादि-अपौरुषेय वेद एवं तदनुसारी आर्ष-धर्म ग्रन्थ है। ईसाइ, मुसलमान, बाइबिल, कुरान से मुँह नहीं मोड़ता। वह उनकी प्रामाणिकता को न झुठलाता है और न उसमें रद्दोबदल की बात ही सोचता है। परन्तु सुधारक हिन्दू वेद आदि के प्रामाण्य का झुठलाना भी मानता है। तो भी वेदादि-शास्त्रों के अधिकांश को ठुकरा-कर भी कुछ अंश को मानता है और उसमें मनमानी अर्थ का अनर्थ करता तथा उसमें रद्दोबदल के लिए भी जी-जान से प्रयत्न करता है। सुधार के आवेश में आकर वह सर्वथा शास्त्र एवं तदुक्त नियमों को ठुकरा देता है। जाति-पाँति, खान-पान, यौन-सम्बन्धों में मनमानी करना चाहता है। यह ऐसी स्थिति है कि जिसे देखकर एक तटस्थ विचारक यही सोच सकता है निराधार निष्प्रमाण तथा अस्थिर क्षणभंगुर तथा ईसाई-मुसलमानों के धार्मिक सामाजिक आदर्शो अनुकरणों के आधार पर बने हिन्दू-धर्म की अपेक्षा तो ईसाई, इस्लाम-धर्म ही श्रेष्ठ है, क्योंकि उनका कोई सुस्थिर आधार है और वे अपेक्षाकृत सुस्थिर भी हैं। उस समाज में उसकी रक्षा के लिए बलिदान की भावना भी है। इन दृष्टियों से भी अनादि-अपौरुषेय शाश्वत वेदों तथा तदनुसारी आर्ष धर्मग्रन्थों का सम्मान ईसाई आदि की अपेक्षा कोटि-कोटि गुणित होना चाहिए। उनके शाश्वत नियमों का भी पालन करने अडिग निष्ठा रखनी चाहिए।

सद्-ग्रन्थों में सभी समस्याओं का समाधान :

अन्यायी अपराधी को कठोर दण्ड देना ही धर्म है। उसके सामने क्षमा और दया दिखाना पाप और कायरता है, यह गीता भी स्पष्ट

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥

कौरवों, पाण्डवों दोनों सेनाओं के बीच खड़े होकर अर्जुन ने जब दोनों ओर के लड़नेवाले अपने सगे-सम्बन्धियों को देखा तो उसका मन कार्पण्यदोष से अभिभूत हो गया। उसने सोचा कि इन सबको मार कर भोग भोगना रुधिर-प्रदिग्ध ग्रास का खाना है, त्रैलोक्य-राज्य के लिए भी इनका वध करना उचित नहीं है। ये लोग भले ही हमें मार दें, पर मैं इन्हें कदापि न मारूँगा। लेकिन जिन भगवान् कृष्ण ने इसी गीता में कहा कि सुहृद्, मित्र, अरि, उदासीन, पापी, पुण्यात्मा सबमें समान बुद्धि होनी चाहिए; विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल सबमें पण्डित समदर्शी होते हैं, उन्हीं कृष्ण भगवान् ने कहा कि 'अर्जुन यदि तुम अनायास प्राप्त अनावृत स्वर्गद्वार के समान इस धर्मयुक्त संग्राम से मुँह मोड़ लोगे तो तुम्हारा स्वधर्म नष्ट हो जायगा, कीर्ति का विनाश होगा। इतना ही नहीं, तुम पाप के भी भागी होगे। अर्जुन तुम अस्वर्ग्य, अनार्यजुष्ट कर्तव्य का त्यागकर उठो और स्वधर्म, स्वजाति के सम्मानार्थ पूर्वजों की मान-मर्यादाओं के रक्षार्थ युद्ध करो :

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

महाभारत का यह भी कहना है कि जिसके साथ जो जैसा बर्ताव करे, उसके साथ वैसा बर्ताव करना धर्म है। मायावी के साथ माया का एवं साधुओं के साथ साधुता का बर्ताव करना ही उचित है :

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व-राजधर्म)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हमारे साहित्यिकों ने और भी बढ़कर कहा है कि जो मूढधी मायावियों के साथ मायावी नहीं होते, वे पराभव को प्राप्त हो जाते हैं :

व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।

(किरातार्जुनीय)

यह सब केवल शब्दों में ही नहीं था। कौरवों ने द्रौपदी को अपमानित किया, भीमसेन ने प्रतीज्ञा कर ली कि दुःशासन की भुजा उखाड़कर उसकी छाती फाड़कर उसका रक्तपान करूँगा और वैसा ही कर दिखाया। दुर्योधन का ऊरूभंग करने की प्रतीज्ञा कर वह भी पूरी कर दिखाई।

इस तरह हिन्दू-शास्त्रों और आदर्शों में कहीं भी कमी नहीं है। कभी किसी देश, काल, परिस्थिति में कोई वैसा न कर सका तो यह व्यक्तिगत, कालगत दोष हो सकता है, शास्त्रों एवं आदर्शों का दोष नहीं। संसार में सात्त्विक, राजस, तामस तीनों ही प्रकार के प्राणी होते हैं। अतएव भीम का स्वभाव पृथक् है, युद्धिष्ठिर का आदर्श उसके पृथक् है। वे कर्त्तव्यपालन में किसी से पीछे नहीं। क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध भी करते थे। शल्य जैसे वीर को रणांगण में मार गिराया, फिर भी दुर्योधन को कभी दुर्योधन नहीं कहा, 'सुयोधन' ही कहते रहे।

दुर्योधन युद्धिष्ठिर आदि पाण्डवों को अपमानित करने के लिए ही वन में गया था। उसका ही पक्ष लेकर जयद्रथ ने वन में द्रौपदी का हरण किया, जो पाण्डवों से पराजित हुआ था। चित्रसेन गन्धर्व दुर्योधन को पराजित कर बाँध (गिरफ्तार) कर ले ही जा रहा था कि उसके मन्त्रियों ने लाचार होकर युद्धिष्ठिर की शरण ली तो युद्धिष्ठिर ने तत्काल अपने भाइयों को दुर्योधन की सहायता के लिए भेज दिया। भीमसेन ने स्पष्ट कहा कि 'चित्रसेन ने हमलोगों का ही काम किया है, ऐसे अत्याचारी दुष्ट दुर्योधन को चित्रसेन द्वारा और अपमानित होने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिया जाय। शत्रु का शत्रु अपना मित्र ही होता है। 'परन्तु युद्धिष्ठिर ने कहा। ऐसा मत सोचो। आपस के युद्ध में दुर्योधन आदि सौ और हम पाँच हैं, पर अन्य के साथ युद्ध में हम सब मिलकर एक सौ पाँच हैं :

परस्परं विरोधे तु वयं पंच शतं तु ते।
अन्यैः सहः विरोधे तु वयं पंचोत्तरं शतम्।

भीमसेन ने द्रौपदी को अपमानित करने के कारण दुर्योधन, दुःशासन का सर्वनाश कर वदला तो चुकाया, पर उसी तरह दुर्योधन की पत्नी तथा दुःशासन की पत्नी को भरी सभा में नग्न करने की वात नहीं सोची। क्या यहाँ भी चोर को छोड़ने और निरपराध को फाँसी पर लटकाने वाली बात याद रखनी चाहिये ? इसी तरह छत्रपति शिवाजी आदि वीर-पुत्रकों ने आततायी मुसलमानों को रणांगण में पछाड़ा, पूरा वदला चुकाया; परन्तु अपने आदर्श के अनुसार उनकी वहू-वेटियों को दण्डित न कर ससम्मान उनके खेमों में पहुंचा दिया। भले ही कोई निर्लज्ज, वेहया उन वीर-पुंगवों की मखौल उड़ाये और उन्हें अशक्त या नामर्द कहे, पर संसार के सभी सत्पुरुष उनके आदर्श की प्रशंसा किये विना नहीं रहेंगे। पाण्डवों द्वारा चित्रसेन की कैद से छूटकर दुर्योधन ने भी अपनी गोष्ठी में यही शेखी पधारी थी कि 'पाण्डव हमारे गुलाम थे, हमारी सेवा करना, हमारी ओर से लड़ना उनका कर्त्तव्य ही था।' किन्तु जिसने सुना, उसने उसकी इस घोर कृतघ्नतापूर्ण निर्लज्जता की भर्त्सना ही की।

शत्रु का उन्मूलन करना हिन्दू-संस्कृति का भी उद्घोष है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'ऋणशेष' अग्निशेष से भी शत्रुशेष अत्यधिक हानिकारक होता है।' इसी दृष्टि से राम ने रावण का और पाण्डवों ने कौरवों का समूलोन्मूलन कर डाला था। फिर भी कोई भी जाति की जाति सदोष होती है, यह भी बुद्धिमानी का अजीर्ण ही कहा जायगा। किसी जाति में अच्छे व्यक्ति हो ही नहीं सकते, यह कहना तर्कसंगत नहीं। रावण

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की लंका में भी कई लोग ईमानदार थे जो रावण के दुष्कर्मों से घृणा करते थे, उसे समझाते भी थे। विभीषण तथा उसके अनेक साथी प्रसिद्ध ही हैं। स्त्रियों में त्रिजटा इतर राक्षसियों से विलक्षण साध्वी थी। दुर्योधन के बन्धुओं में विकर्ण ने द्रौपदी के अपमान के समय कड़ा विरोध किया था। छत्रपति शिवाजी के समय भी कुछ मुसलमान छत्रपति के साथियों में थे। इसी लिए युद्ध-काल में हिन्दू आदर्शवीरों ने शत्रुओं का समूलोन्मूलन करते हुये भी अपने आदर्शों को नहीं भुलाया, जाति-मात्र से विद्वेष नहीं किया। अनेक की रक्षा भी की। उनकी दृष्टि में असुरों में भी प्रह्लाद जैसे अच्छे लोगों के होने की सम्भावना थी विश्वासघाती तो अपने अन्दर भी हो सकते हैं। दुर्योधन पाण्डवों का भाई ही तो था। रावण भी ब्राह्मण ही था, वेन भी क्षत्रिय ही था। अतएव आस्तिक लोग ब्राह्मण-राज या क्षत्रिय राज न चाहकर धर्मनियन्त्रित राज्य ही चाहते थे। अन्यथा ब्राह्मण लोग रावण-राज का, क्षत्रिय वेन-राज का विरोध न करते। आजकल ब्राह्मण रामराज्य का गुणगान करते और रावण का जनाजा निकालते हैं।

अपराधियों को भी दण्ड न देना, यह परम्परा पूर्वकाल से प्रचलित नहीं है। ताड़का के आक्रमण करने पर प्रभु श्रीराम के मन में कुछ ऐसी ही बात आई तो गुरु विश्वामित्र ने स्पष्ट कहा : 'राघव, गो-ब्राह्मण के हितार्थ इस दुर्वृत्त यक्षी का निश्चय ही वध करो। स्त्री होने के कारण इसके वध से घृणा न करो। राजपुत्र को चातुर्वर्ण्य के रक्षा के लिए नृशंस कार्य करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। प्रजारक्षण के लिए नृशंस-अनृशंस, पातक-युक्त, धर्म या पातक भी करना पड़े तो करना चाहिए। कारण राज्यधर्म बड़ा धर्म है, उसकी रक्षा के लिए एक सीमा में सदोष कर्म भी किये जा सकते हैं।' विश्वामित्र ने यह भी कहा कि 'विरोचन की पुत्री मन्थरा सम्पूर्ण पृथ्वी का विनाश करना चाहती थी, इसीलिए इन्द्र ने उसका वध किया। सम्पूर्ण लोगों को निद्रारहित एवं इन्द्रशून्य बनाने की इच्छावाली 'काव्य-माता' भृगुपत्नी का विष्णु ने ही

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh, Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वध किया। इस तरह पूर्वोक्त तथा अन्व भी अनेक राजाओं एवं राजपुत्रों ने अधर्मयुक्त नारियों का वध किया था। अतः तुम मेरी आज्ञानुसार घृणा त्यागकर इसका वध अवश्य करो :

गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम् ।
नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम ।।
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय कर्तव्यं राजसूनुना ।
नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात् ।।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ।
राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः ।।
अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ........................ ।।
श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप ।
पृथ्वीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत् ।।
विष्णुनाऽत्र पुरा राम भृगुपत्नी पतिव्रता ।
अनिन्द्रलोक मिच्छन्ती काव्यमाता निषुदिता ।।
एतैश्चान्यैश्च बहुभी राजपुत्रैर्महात्मभिः ।
अधर्मसहिता नार्यो हताः पुरुषसत्तमैः ।।

(वाल्मी० रामा० १.२५.१५-२२)

स्त्रीवध अधर्मयुक्त होने पर गो-ब्राह्मणहितार्थ चातुर्वर्ण्य-पालनार्थ प्रजारक्षणार्थ अधर्म, दुर्वृत्त, दुष्ट स्त्रियों का वध करना अनुचित नहीं है।

अनृतवदन (मिथ्या भाषण) पातक है, सत्य-वदन पुण्य है। परन्तु यदि सत्य-वदन से अनेक सत्पुरुषों का वध होता हो, तो अनृत-भाषण कर उनका प्राण बचाना पुण्यकर्म होता है। यही नहीं, कुछ गायों या साधुपुरुषों का पीछा करते हुए दुष्ट लोग उनका पता पूछते हुए आयें, तो उसका ज्ञान होने पर भी दुष्टों को न बताना ही धर्म है। वहाँ सत्य बोलना ही पाप है। हाँ, न बोलने से काम चलता हो तो न बोलकर काम चलायें। परन्तु यदि न बोलने से शंका होती हो तो झूठ बोलकर भी उनकी प्राणरक्षा करनी चाहिए, यह सब महाभारत शान्तिपर्व में स्पष्ट है।

CC0. In Public Domain. Kritikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन सब दृष्टियों से दुष्ट स्त्रियों का वध करना युक्त हो सकता है। परन्तु अपराधिनी स्त्रियों का ही वध उचित है। कुछ स्त्रियों के अपराध से सबका वध करना उचित नहीं कहा जा सकता। किसी वाइसराय पर दिल्ली में बम फेंका गया, कुछ सैनिक अधिकारियों ने उसके प्रतिशोध में कत्लेआम करना चाहा। पर समझदार लोगों ने इसका विरोध किया और अपराधी को ही ढूँढ़कर दण्डित करने का समर्थन किया। वाइसराय ने भी अन्तिम पक्ष का ही समर्थन किया!

इसी तरह अपराधिनी मुस्लिम औरतों का अपनी पत्नी बनाकर उनके सदोष रक्तों का अपने हिन्दुओं में सम्मिश्रण कर उसे भी सदोष बनाना उचित नहीं कहा जा सकता। रावण ने भी परदाराभिमर्षण 'राक्षसों का ही परमधर्म' कहा है। क्या हिन्दू भी उसी धर्म का आश्रयण कर राक्षस बन जायें?

मुसलमान शरणार्थी बनकर हिन्दू-राज्यों में हिन्दुओं का टुकड़ा खाकर जीते रहे। मुस्लिम शक्तियों के आक्रमण के समय उन्होंने उनका साथ देकर राष्ट्र के साथ विश्वासघात किया, तो वे परम दण्ड्य हैं। ऐसे लोगों को शरण में लेने में खूब छान-बीन होनी चाहिये। राजनीति में धोखा देना उतना पाप नहीं होता जितना कि धोखा खाना। इसलिए विभीषण को शरण में ग्रहण करने में बड़ी सावधानी बरती गयी। श्रीराम के मन्त्रिगण सर्वथा विभीषण को गिरफ्तार कर बन्दी बना रखना चाहते थे। उन सब का समाधान करके ही राम ने विभीषण को ग्रहण किया। राम में वह शक्ति थी कि इच्छा करने पर अंगल्यग्र भागमात्र से समस्त भूमण्डल के दैत्य-दानव, राक्षसों का वध कर सकते थे। इसी बल पर उन्होंने विभीषण को शरण में ग्रहण किया था:

पृथिव्यां दानवान् सर्वान् पिशाचान् गुह्यकांस्तदा।
अंगुल्यग्रेण तान् हन्मि इच्छन् हरिगणेश्वर॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसी बलपर उन्होंने (श्रीराम ने) कह दिया की विभीषण हीं नहीं; रावण भी शरण आये तो उसकी रक्षा की जायगी :

विभोषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ।

बहते हुए जलप्रवाह में बहते व्यक्तियों को बचाना ठीक है, पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि कहीं बचाने की धुन में बचानेवाला ही न वह जाय। अतः अपनी स्थिति मजबूत करके ही बहनेवाले को बचाने का प्रयत्न अच्छा है। अतः अपने धनक्षय, जनक्षय शक्तिक्षय का ध्या रखकर• साथ ही शरणागत की ईमानदारी की परख करके ही शरणागत का ग्रहण उचित है। राम की देखादेखी असमर्थ प्राणी द्वारा कपटी शत्रुओं को शरण में लेना वैसा ही हैं, जैसे किसी घोड़े के पैर में नाल ठुकवाते देख मेढकी भी अपने पैर में नाल ठुकवाने की चेष्टा करे।

संख्या क्षय का प्रश्न !

अपनी संख्या की रक्षा और वृद्धि का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, पर इसके प्रलोभन में आकर अवैध मार्गों का अपनाना कभी उचित नहीं। कई बार शक्ति-सम्पन्न अल्पसंख्यक लोग निर्बल बहुसंख्यकों को पराजित करते ही हैं। भेड़-बकड़ियों की संख्या बहुत होने पर भी शक्तिशाली सिंह का सामना करना उनके लिए असम्भव ही होता है। शुद्ध रक्त, शुद्ध परम्परा के विद्वान्, बलवान् थोड़े लोग भी बहुत कुछ कार्य कर सकते हैं। आजकल तो अन्न-संकट मिटाने के लिए भारतीय शाशक जनसंख्या घटाने की चिन्ता में व्यस्त होकर करोड़ों रुपये की धनराशि खर्च कर रहे हैं, यद्यपि खाद्यसमस्या का समाधान खानेवालों को समाप्त करना नहीं। गोपालन, गोरक्षण आदि पर शक्ति खर्च करने से अनायासेन सब समस्याओं का समाधान हो सकता है। फिर भी संख्या बढ़ाने के लोभ में अवैध असंख्य स्त्रियों का संग्रह अवैध लोगों को मिलाकर सांकर्य फैलाना परि-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माणतः अत्यन्त अनिष्टकर ही है। मनु, गीता और कौटिल्य आदि ने वर्ण-संकरों के विस्तार से राष्ट्रविप्लव का ही खतरा बतलाया है।

ध्यान रहे कि गायों, वन्य मनुष्यों के झुण्डों के आदर्श पर हिन्दू-समाज का निर्माण नहीं हुआ है। अतएव उनका अनुकरण भी आवश्यक नहीं। ब्रह्मचर्य व्रत, एकपत्नी-व्रत, पातिव्रत्य, सदाचारपूर्ण जीवन मनुष्य की विशेषतायें हैं। खाना-सोना, रोना, डरना-मरना सन्तान पैदा करना आदि मनुष्य और पशु-पक्षी में समान होते हुये भी धर्मनिष्ठा, सदाचार-पालन मनुष्य की ही विशेषता है :

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः

मनुष्य की सभी हलचलें धर्मनियन्त्रित होती हैं। मनुष्य की राजनीति भी धर्म से ओत-प्रोत होती है। संक्षेप में कहा जा सकत है विवाह-प्रथा, उत्तराधिकार-व्यवस्था मनुष्य की असाधारण वस्तु है। पशुओं में विवाह का कोई नियम नहीं। पशु पिता एवं माता, भगिनी, पुत्री आदि को नहीं पहचानता। इसीलिए उसके लिए सब समान है। परन्तु मनुष्य को पिता-माता की पहचान होती है। मनुष्य पत्नी भगिनी, पुत्री में भेद मानकर यथायोग्य व्यवहार करता है। पशु अपने बेटे, पोते को उत्तराधिकार के रूप में कुछ नहीं छोड़ जाता; पर मनुष्य तो खेत-खलिहान, मकान, दूकान, उद्योग-धन्धा अपने बेटे-पोतों को छोड़ जाता है।

विवाह और उत्तराधिकार दोनों ही शब्द-प्रणाम पर निर्भर हैं। व्यवहार में प्रत्यक्ष एवं अनुमान का उपयोग तो पशु भी करता है। दण्ड लेकर आते, आक्रोश करते मनुष्म को अनिष्टकारी समझकर वह भागता है। पुचकारते, रोटी या घास लेकर आते पुरुषों को देखकर उधर प्रवृत्त होता है। 'अयं दण्डों मदनिष्टकरः दण्डत्वात् पूर्वानुभूतदण्डवत्' इत्यादि अनुमान उसकी प्रवृत्ति-निवृत्ति के मूल होते हैं। परन्तु शब्द-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रमाण का आदर न होने से वह अपने पिता को नहीं जान सकता, पुत्री-भगिनी को भी नहीं जान पाता। उत्तराधिकार में पिता की सम्पत्ति का अधिकारी बनने के लिए अपना पिता प्रमाणित करना पड़ता है। मनुष्य प्रत्यक्ष-अनुमान से भिन्न शब्द या आगम-प्रमाण भी मानता है। अतः मनुष्य में विवाह-प्रथा और उत्तराधिकारी व्यवस्था सम्भव है, पशु में वह सम्भव नहीं।

मतयो यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वानराः।

शास्त्राणि यत्र गच्छम्ति तत्र गच्छन्ति ते नराः॥

जहाँ प्रत्याक्षानुमान पर निर्भर बुद्धि जाती है, वहाँ जानेवाले वानर होते हैं। किन्तु जहाँ शास्त्र जाते हैं, वहाँ चलनेवाला मनुष्य होता है।

अतः सभ्य मनुष्य-समाज में पशु-समूहों और वन्य मनुष्यों का अनुकरण कर संख्या बढ़ाना लक्ष्य नहीं हो सकता। नियमित स्त्रियों के काम सीमित होता है, अपरिमित स्त्रियों के होने पर काम-प्रवृत्ति उद्दाम होती है। परन्तु जहाँ संयम ब्रह्मचर्य एवं पातिव्रत्य का महत्त्व होता है, वहाँ काम की उद्दाम प्रवृत्ति कभी अभीष्ट नहीं होती।

जनतन्त्र या बहुमत के राज्यों के समय यद्यपि संख्या-बाहुल्य पर ही शासन-व्यवस्था आधारित होती है, अतः वहाँ संख्यावृद्धि का महत्त्व अवश्य है। संग्रामों में भी संख्या का महत्त्व कम नहीं होता। फिर भी संख्या-वृद्धि के मोह में पड़कर अपने धर्म-कर्म, सभ्यता-संस्कृति की तिलांजलि नहीं दी जा सकती। यदि धर्म, संस्कृति, सभ्यता आदि कोई स्थिरवस्तु नहीं है तो संघर्ष या संग्राम भी किसकी रक्षा के लिए होगा? स्वत्य मिटाकर स्वराज्य का भी क्या महत्त्व है? स्वत्य की रक्षा के लिए ही स्वतन्त्रता का भी महत्त्व है। यदि सिंह स्वतन्त्र होकर गदर्भ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हो जाय तो इस तरह स्वतन्त्रता से तो कटघड़े में बन्द रहकर सही सिंह रहना ही श्रेष्ट है।

अतः स्वतन्त्रता, स्वराज्य, शासन-सत्ता सबका महत्त्व अपने धर्म संस्कृति, सभ्यता एवं जाति की स्वत्व-रक्षा में ही है। अतः उनकी रक्षा के साथ ही संख्या-वृद्धि अभीष्ट हो सकती है। फिर भी केवल संख्या नहीं, धीर, धर्मनिष्ठ, सदाचारी, बुद्धिमान्, बलवानों की वृद्धि ही संख्यावृद्धि का आधार होना चाहिए। यही एक-श्चन्द्रस्तमो हन्ति का रहस्य है।

आततायी स्त्री-पुरुषों को दण्डित करना उचित होने पर भी अपना आर्यत्व सुरक्षित रखना ही चाहिए। ताड़का, शूर्पनखा को उचित दण्ड देने पर भी श्रीराम और उनकी सेना ने रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि की स्त्रियों को अपमानित नहीं किया और न उन्हें बन्दरों में बाँटा। किन्तु उनके साथ यथायोग्य वर्ताव ही किया गया।

नरकासुर की बन्दिनी राजकन्याएँ

श्री सावरकर ने लिखा है कि "श्रीकृष्ण ने असुर-राज्य पर आक्रमण कर नरकासुर को मार डाला। इस सामाजिक-राजनीतिक बदले से ही सन्तुष्ट न होकर उन्होंने नरकासुर के बन्दीगृह की वन्दिनी आर्य ललनाओं को संकट मुक्त कराकर उन्हें अपने राज्य में लाकर सामाजिक बदला भी लिया। असुरों द्वारा भ्रष्ट की गयी कन्याएँ भ्रष्ट हो जाने के भय से असुरों के हाथ ही नहीं सौंप दी गयीं। किन्तु सहस्रों स्त्रियों को वापस लाकर सामाजिक-जीवन में उन्हें ससम्मान समरस बना दिया। उनके संरक्षण एवं पोषण का भार भूपति कृष्ण ने स्वयं वहन किया, अपने राष्ट्र का स्त्रीसंख्या-बल कभी क्षीण नहीं होने दिया।" श्री गोलवलकर ने भी अपने 'विचार-नवनीत' में श्रीकृष्ण के उक्त कार्य का 'विधवा-विवाह' कहकर समर्थन किया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहना न होगा कि यह सब शास्त्रविरुद्ध एवं सत्य का अपलाप है। स्पष्टः श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ने वन्दिनी राजकन्याओं के साथ उनकी रुचि के अनुसार विवाह किया था। वे शुद्ध कन्याएँ ही थीं, यह भी भागवत से प्रमाणित है।

लंका'विजय के पश्चात् श्री हनुमान् ने इच्छा प्रकट की कि जिन राक्षसियों ने सीता को लंका के वासकाल में बे-रहमी से सताया था, उनको उचित दण्ड दिया जाय। पर सीता ने ही इस क्रूर नृशंस कार्य को आर्य-जनोचित आनृशंस्य के विपरीत कहकर हनुमान् को रोक दिया।

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥

(वाल्मीकि०रामा० ६११३.४३)

अर्थात् वधार्ह स्त्रियों पर भी आर्यजनों की करुणा ही करनी चाहिए।

श्रीकृष्ण के राजकन्याओं के साथ विवाहकार्य से विधवा-विवाह और पर स्त्रियों तथा म्लेच्छस्त्रियों से विवाह कर समाज को वर्णसंकर बनाने का समर्थन करना सर्वथा घृणित कार्य है।

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम्।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः॥
तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम्॥

(भाग० १०.५६.३३-३४)

इन वचनों में स्पष्ट ही कहा गया है कि श्रीकृष्ण ने भौमासुर द्वारा जीतकर लायी गयी सोलह हजार क्षत्रियकन्याओं को देखा। वे कृष्ण को देखकर मोहित हो गयीं और उन्होंने कृष्ण को मन से पतिरूप में वरण किया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सैनिकों द्वारा उचित, विरोधी-विधर्मियों की कन्याओं से विवाह कर लेना क्षम्य हो सकता है, परन्तु धर्मदृष्टि से उसका कोई महत्त्व नहीं। एतावता हूण, शक आदि की विवाहिता, अविवाहिता सभी स्त्रियों से विवाह करने या उन्हें वैसे ही अपनी पत्नी बनाकर हिन्दू-समाज में समरस कर लेने आदि की कल्पनाएँ निष्प्रमाण हैं। यदि विधर्मी, म्लेच्छों एवं उनके समाज को आत्मसात कर लेने को पाचन-शक्ति, पौरुष या पराक्रम माना जाय तब तो कहना पड़ेगा कि सर्वाधिक पाचन शक्ति म्लेच्छों में ही थी और है, जिनके लिए कोई भी स्त्री किसी समाज की हो, सबकी खपत हो जाती है। शास्त्रों एवं तदनुसारी धर्मों, सदाचारों के कारण ही मूर्ख से लेकर विद्वान् तक, ब्राह्मण से लेकर भंगी तक सभी रोटी बेटी के सम्बन्ध में शास्त्रीय विचारों का आदर करते थे। उसी निष्ठा का प्रभाव था कि आपके शब्दों में ही "सहस्रों हिन्दू-स्त्रियो ने जौहर-ज्वालाओं को सतत धधकाये रखा। परधर्मी उनका शरीर भ्रष्ट न कर सके। इसीलिए लाखों हिन्दू-स्त्रियों एवं पुरुषों ने तालाबों और कुँओं में कूदकर जलसमाधि ली। नन्हें-मुन्ने, दूध-मुँहे बच्चों को छाती से चिपकाकर चिताओं की ज्वालाओं का वरण किया, लाखों ने मुसलमानों के हाथों में पड़ने से पहले ही प्राणान्त कर दिया। मुसलमानों के चंगुल में 'हम मुसलमान नहीं बनेंगे' की वार गर्जना करते हुए छत्रपति सम्भा, सिखगुरु तेगबहादुर, वीर वन्दा बैरागी आदि के समान उन्होंने दुःसह यातनाओं को स्वीकार कर अपने मांस के लोथड़े नुचवा दिये, पर मरणपर्यन्त झुके नहीं।

आप तो यह भी कहते हैं कि 'क्या हम उन वलिदानियों को कभी भूल सकेंगे?' परन्तु जिन आप जैसे सुधारकों की दृष्टि में शास्त्र कोई प्रामाणिक ग्रंथ नहीं है, धर्म भी कोई अडिग वस्तु नहीं, तो क्या आपके तथाकथित प्रगतिशील सुधरे समाज में ऐसा कोई एक भी वलिदानी हो सकता है? आपकी दृष्टि से तो वे सब वलिदान जाति-भेद

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शुद्धिबन्दी, सद्गुण-विकृतिरूप मूर्खता के कारण ही हुए हैं। फिर भी आप उन्हें 'हिन्दू-रक्षा का कवच' मानते हैं, यही आश्चर्य है !

हम कह चुके हैं कि शुद्धि पर भारतीय-धर्म में कभी प्रतिबन्ध नहीं था। सदा-सर्वदा धर्म-भ्रष्ट होने पर उसका प्रायश्चित्त शास्त्रों में है ही। कभी भी धर्म-भ्रष्टों को बहिष्कृत कर विधर्मियों को सौंप देने की नीति नहीं रही। मिताक्षरा आदि में स्पष्ट उल्लेख है कि धर्म-भ्रष्ट स्त्री का भी त्याग विहित नहीं है; क्योंकि व्यक्त स्त्रियों द्वारा और अधिकाधिक पाप होने की सम्भावना होती है। अहिंसा, सत्य, परधर्म-सहिष्णुता, स्त्रीरक्षण, अक्रूरता का व्यवहार सदा ही सद्गुण माने गये और सद्गुण रहेंगे। इन घोषणाओं को राष्ट्रघातक कहना ही घातक है।

'सब धर्म समान हैं, राम-रहीम समान हैं, परधर्म-सहिष्णुता' आदि उक्तियाँ यद्यपि वस्तुस्थिति से सम्बन्ध नहीं रखतीं, क्योंकि धर्म प्रत्यक्ष अथवा अनुमानगम्य वस्तु नहीं है। पौरुषेय ग्रन्थों में पुरुषाश्रित भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि अनेक दोषों की सम्भावना रहती है। अतः अपौरुषेय अनादि वेद ही धर्म में मुख्य प्रमाण हैं। आर्ष-ग्रन्थ भी वेद से अविरुद्ध ही आदरणीय होते हैं। अतः कोई भी हजार दो हजार वर्षों के पौरुषेय ग्रन्थ एवं उन पर आधारित धर्मों को वैदिक-धर्म के समान नहीं कहा जा सकता। फिर भी किसी पर बलात् किसी धर्म का थोपा जाना उचित नहीं, विचारपूर्वक ही उचित समझा जा सकता है। विशेषतः जिस राष्ट्र में विभिन्न धर्मों के लोग बसते हो, उस राष्ट्र के शासक को परधर्म-सहिष्णुता या सर्वधर्म-समानता का सिद्धान्त सर्व-सामंजस्य की दृष्टि से अपेक्षाकृत आवश्यक है। परन्तु जहाँ सामूहिक तौर पर अन्याय और अत्याचार द्वारा धर्मद्वेष के कारण हिन्दू-धर्म, हिन्दू-समाज के विनाश का प्रयत्न हो रहा हो, वहाँ इस नारे का कोई उपयोग नहीं है। वहाँ तो हर मूल्य पर आततायी को दण्डित कर समूल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्मूलित कर देना ही धर्म है। फिर भी लम्बे इतिहास में अनेक अवस्थाएँ आती हैं। कभी आक्रामक शक्तियों का मुकाबला करने के लिए राष्ट्र की विद्यमान शक्तियों को संघटित होना भी आवश्यक हो सकता है। अनेकबार ऐसा होता है। कई वार हिन्दू-मुस्लिम सम्मिलित शक्तियों ने अंग्रेजों का सामना किया था अथवा कभी अमानवीय सिंह, व्याघ्रादि शक्तियों का सामना करने के लिए संगठित शक्ति की अपेक्षा हो सकती है। उस समय विरोधी शक्तियों से लाभ न उठाना भी बुद्धिमानी नहीं है। क्षीर-समुद्र का मन्थन करने के लिए देवताओं को परामर्श देते समय भगवान् विष्णु ने असुरों से भी सन्धि करने के लिए कहा था।

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे।

कार्यार्थ गौरव होने पर शत्रुओं से भी सन्धि कर लेनी चाहिए, उसी स्थिति में जब कि किसी बड़े कार्य का एकपक्षीय यत्न से हो सकना सम्भव न हो। ऐसे अवसर पर निरर्थक अपनी जाति, धर्म या समाज का सर्वोत्कर्ष वर्णन करना अनावश्यक है। अतः किसी स्तर पर साधर्म्य-प्रदर्शन आवश्यक हो जाता है। सभी पदार्थों में साधर्म्य-वैधर्म्य किसी न किसी अंश में होता ही है।

पाँचवें अध्याय में श्री सावरकर जी ने देवल स्मृतिकार और भाष्यकार मेधा-तिथि द्वारा हिन्दू-धर्म-परिष्कार का महत्त्व वर्णन किया है। उनकी दृष्टि में "उन दिनों हिन्दू-संख्याबल घटानेवाली शुद्धि-बन्दी एवं सद्गुण-विकृति आदि आत्मघातक रूढ़ियों को उस समय का हिन्दू-समाज अपना प्रमुख धर्म मानने लगा था। यदि उस अन्ध-परम्परा के काल में उन सब किताबी जंगलों का उच्छेदन करने के लिए यत्र-तत्र विभिन्न देशों में धैर्यवान्, दूरदर्शी, सुधारक राजनीति-धर्म की महान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विचारक, कर्मवान् न हुये होते; अपने प्रभाव से राष्ट्र, धर्म की रक्षा के पराक्रम का मार्ग उन्होंने प्रशस्त न किया होता और म्लेच्छ शत्रुओं को उस धर्म-समर में वे पराजित न करते, तो हिन्दू-धर्म का संख्याबल एवं राष्ट्र के वल का विनाश अवश्यंभावी था।

"स्मृतिकार महर्षि देवल और मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि उन तेजस्वी पुरुषों में थे, जिनका तेजस्वी व्यक्तित्व सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। हिन्दू-राष्ट्र के आपत्तिकालीन क्षणों में पराक्रम-पूर्ण विजिगीषा, उक्त नये आचरण, नये शास्त्र और नयी समस्याओं की आवश्यकतापूर्ति के लिए ही उन्होंने वे ग्रन्थ लिखे थे। मुसलमानों द्वारा हिन्दू-संख्याबल को क्षति पहुंचायी गयी। इस क्षति की पूर्ति के लिए अपने आचार-धम में सुधारक धार्मिक अत्याचारों का धार्मिक अत्याचार द्वारा तेजस्वी एवं प्रवल प्रतिकार करने के विचार से प्रथम बार सिन्धु-प्रदेश में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि कर्मशील पुरुषों का संगठन निर्माण किया गया।

सिन्धुतीरमुपासन्तं देवलं मुनिसत्तमम्।

उपर्युक्त श्लोकांश से आरम्भ होनेवाले धर्म-भ्रष्टीकरण अध्याय से स्पष्ट विदित होता है कि सिन्धुनदी के तटपर देवल ऋषि के आश्रम में एकत्रित हिन्दू नेताओं ने देवल ऋषि से प्रश्न किया था कि म्लेच्छों ने अपने शस्त्र-वल से जो धर्मविनाश आरम्भ किया है, जो स्त्री-पुरुष उसके शिकार होकर धर्म-भ्रष्ट हो गये हैं, क्या उनके लिए प्रायश्चित का कोई ऐसा मार्ग है, जिससे वे पुनः अपनाये जा सकें? उस समय की इस चर्चा और देवल ऋषि द्वारा अन्तिम रूप से अपनी स्मृति में साधिकार शब्दों में शुद्धीकरण के अनुकूल आचारों का किया गया उल्लेख देवल-स्मृति के श्लोकों में प्राप्य है। विलकुल सनातन माने गये उस समय के हिन्दू-आचारों के कारण हिन्दू-संख्या दिनों दिन घट रही थी। इस नये स्मृति-ग्रन्थ के प्रेरकों, लेखकों और अनुयायियों ने यह निश्चय किया कि शास्त्रों द्वारा वर्णित आचार आपत्तिकाल में शास्त्रविहित नहीं हो सकता।

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने के लिए 'आपद्धर्म' नामक एक प्रगतिशील शास्त्र हमारे धर्मशास्त्रों के शास्त्रागारों में सुरक्षित था, पर उस शास्त्र का उपयोग करनेवाले नेतृत्व की आवश्यकता थी।' देवल का समय उनके अनुसार आठ सौ तथा नौ सौ ईसवी के बीच का है।

श्री सावरकर जी की दृष्टि में "महर्षि देवल ने सुधारक होकर कुछ अंशों में सुधार किया। उन्होंने पुरानी रूढ़ि के शास्त्रों को ठुकराकर 'देवल-स्मृति' में स्पष्ट आदेश दिया कि मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये गये हिन्दू स्त्री-पुरुष यदि कुछ वर्षों के भीतर हिन्दू-धर्म में पुनः आना चाहें तो साधारण उपवासादि प्रायश्चित कर उन्हें हिन्दू बना लिया जाय। उन्होंने यह भी उदारता प्रदर्शित की कि मुसलमानों द्वारा वलात् भ्रष्ट की गयी स्त्रियों को मासिक ऋतुदर्शन होते ही शुद्ध समझ कर हिन्दू-धर्म में ले लेना चाहिए। मुसलमानों के पास से छीनकर लायी गयी गर्भवती हिन्दू-स्त्रियों को भी प्रसूति के पश्चात् उनके पेट का वह शल्य निकलते ही हिन्दू वैसा ही शुद्धि मानें जैसे अग्नि-परीक्षा के वाद शुद्ध सोना।'

श्री सावरकर जैसे आधुनिक सुधारकों को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। वे कहते हैं : "आश्चर्य है, देवल-स्मृति नें उनके उदर से उत्पन्न शिशुओं को शुद्धकर हिन्दू-धर्म में सम्मिलित कर लेने की व्यवस्था क्यों नहीं दी ?"

वस्तुतः इन सुधारकों की दृष्टि में स्थिर प्रामाणिक 'शास्त्र' और 'धर्म' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। इनका धर्म और शास्त्र सब काल्पनिक हैं और आवश्यकतानुसार बनते-बिगड़ते रहते हैं। फिर भी ये लोग स्वतंत्र प्रगतिशील नये धर्म या शास्त्र को चुनने की हिम्मत नहीं रखते। किन्तु विधर्मियों, म्लेच्छों का पदानुसरण कर उन्हीं आदर्श पर, अपने उसी पुराने 'हिन्दू' नाम पर नया शास्त्र और धर्म गढ़ना चाहते हैं !

वेदादि-शास्त्रों एवं तदाधारित स्मृतियों से विरुद्ध कोई भी स्मृति, शास्त्र या आचार तथा धर्म कभी भी हिन्दुओं को मान्य नहीं हुआ। वेदानुसारिणी वेदाविरुद्ध स्मृतियों का परस्पर समन्वित अर्थ ही उन्हें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मान्य होता है। इसीलिए मिताक्षरा, हेमाद्रि, पराशर, माधव, निर्णय-सिन्धु आदि ने परस्पर विरुद्ध भासमान विषयों को मीमांसा सम्मत तर्कों से समन्वित करके ही सनातन-धर्म तत्त्व का वर्णन किया है।

श्री सावरकर जी का यह उद्धरण भी असत्य है कि "बाल-विधवा-प्रसूति, कौमार्य-संकर की वहिष्कार सरीखी घटनाओं के घटित होने पर वदनामी के भय से शास्त्रिजनों ने युक्ति निकाली थी कि गाँव की नदी के उस पार के रहनेवाले मुसलमानों के बाड़े के मुसलमान को बुलाकर वह शिशु उसे सौंप दिया जाता था। वह बड़े आनन्द से उसे घर ले जाकर अपनी संख्या वढ़ाता था।" श्री सावरकर आदि के अनुसार वर्णशुद्धि, सत्तीत्व-पालन जैसी महत्त्वपूर्ण कोई वस्तु है ही नहीं, तो उनकी दृष्टि में जौहर करके अग्निज्वालाओं में लाखों स्त्रियों का प्राण देना भी शुद्ध मूर्खता ही ठहरती हैं, म्लेच्छों, मुसलमानों के जो भी पाप, अत्याचार हैं और उनका वे वर्णन करते हैं, उनकी दृष्टि में वे सब धर्म बन जाते हैं, यदि वे सब काम हिन्दू करें। यदि वे सब अत्याचारी म्लेच्छ हिन्दू होकर सब कुछ वही करते रहें, तो सब ठीक हो जाता है।

हिन्दू-शास्त्रानुसार तो ऐसी सब स्त्रियों की भगवन्नामादि से पूर्ण पारलौकिक शुद्धि हो जाती है। लोक के लिए भी उन्हें हिन्दू-धर्म की नवनिर्मित श्रेणी में रखा जा सकता है। उन शिशुओं को भी त्रिशलल-क्षणवान् मानव धर्म का[1] पालन कराकर उनकी भी पृथक् श्रेणी हो सकती

---

1. देवर्षि नारद ने बदरिकाश्रम में साक्षात् नारायण के मुख से श्रुत त्रिशल्लक्षणवान् मानवधर्म का निरूपण किया है, जो निम्नलिखित है :

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे।
वक्ष्ये सनातनं धर्मंनारायणमुखाच्छ्रुतम्॥
योऽवतीर्यात्मनोऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः :
लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे॥
धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः।
स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। हजारों श्रेणियों में एक-दो श्रेणियाँ बढ़ जाने में कोई बाधा नहीं पड़ती। लेकिन रक्तसांकर्य करने पर तो शुद्ध ब्राह्मणादि वर्णमूलक वैदिक-धर्म ही समाप्त हो सकता है।

श्री सावरकर जी कहते हैं: "चाहे कुछ भी हो जाय, जाति भी नष्ट हो जाय, तो भी जाति शुद्ध ही रहनी चाहिए, यह विचार जो हम हिन्दुओं में घुसा, वह निरा पागलपन है।" वे यह भी मानते हैं कि देवल-स्मृति में यह निर्देश नहीं मिलता कि जन्मजात मुसलमान को भी शुद्धकर हिन्दू बनाया जा सकता है। परन्तु आजकल के तथाकथित नये सनातनी सुधारक तो पहले से कहते हैं कि 'मुसलमान ईसाई कोई जन्म

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥

अर्थात् १. सत्य, २. दया, ३. तप, ४. शौच, ५. तितिक्षा, ६. ईक्षा, ७. शम, ८. दम, ९. अहिंसा, १०. ब्रह्मचर्य, ११. त्याग, १२. स्वाध्याय, १३. आर्जव, १४. संतोष, १५. समदृष्टि, १६. ग्राम्येहोपरम, १७. मनुष्यों, के सुख चाहने पर भी दुःख का मिलना, १८. मौन, १९. आत्मविचार, २०. प्राणियों में अन्नादि का संविभाग, २१. प्राणियों में आत्म-बुद्धि, विशेषतः मनुष्यों में भगवद्बुद्धि, २२. श्रवण, २३. कीर्तन, २४. स्मरण, २५. सेवा, २६. यज्ञ, २७. नमस्कार, २८. दास्य, २९. सख्य और ३०. आत्मसमर्पण यह त्रिशत्-लक्षण सामान्य-धर्म मानवमात्र के लिए कल्याणकारी बताया गया, जिससे सर्वात्मा परमेश्वर सर्वथा सन्तुष्ट, प्रसन्न होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की जाति नहीं। ईसाई सूर्यवंशी और मुसलमान सोमवंशी क्षत्रिय ही हैं और उन्हें गंगाजल या शालिग्राम, नर्मदेश्वर का चरणोदक पिलाकर सर्वथा शुद्ध किया जा सकता है।' पर श्री सावरकर की दृष्टि में 'उस समय हिन्दू किसी जाति को अपनी जाति में मिलाना भयंकर पाप समझते थे। संकरता से गीता जैसे शास्त्र-निर्माता भी चिन्तातुर दिखायी देते हैं।

काशी के कुछ विद्वान् एवं इन तथाकथित सुधारक सनातनियों के मतानुसार मेधातिथि की दृष्टि में विलायत-यात्रा से धर्महानि नहीं होती, क्योंकि मेधातिथि के अनुसार कोई भूमि स्वतः अशुद्ध नहीं रहती; किन्तु म्लेच्छ आदि के संसर्ग से अशुद्ध होती है। भूमि की दाहन, प्लावन, गोक्रमण आदि दशविध संस्कारों से शुद्धि हो जाती है। मेधातिथि के अनुसार म्लेच्छों के आक्रमण और अधिवास से भारतभूमि भी अयज्ञीय बन जाती है। हिन्दुओं द्वारा म्लेच्छ देशों पर आक्रमण कर सबको चाण्डाल घोषितकर वहाँ वर्णाश्रम का प्रतिष्ठापन करने पर वह म्लेच्छ भूमि भी यज्ञीय भूमि हो जाती हैं। पर यह सब मेधातिथि की सनक और सुधारवाद का भूतावेश ही है। क्योंकि जैसे गंगाजल की पाप-नाशकता स्वाभाविक है, वैसे ही कर्मनाशा की पुण्य-नाशकता भी स्वाभाविक है। वैसे ही काशी आदि सप्तपुरियों की मोक्ष-दायिकता भी स्वाभाविक है। वैसे ही पापात्मा का आश्रय होने से विलायतादि म्लेच्छ-देश-प्रत्यन्तदेशों की अशुद्धता भी स्वाभाविक ही है। अतएव उनकी दशविध संस्कारों से शुद्धि नहीं हो सकती। काशी आदि भूमि सदा ही शुद्ध रहेगी, भारत सदा ही यज्ञीय देश रहेगा। इतर देश सदैव अयज्ञीय रहेंगे। इस सम्बन्ध में 'नान्तमियात्, न जनमियात्' (बृह० उप० ३) तथा—

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥

यह मनु-वचन ही प्रमाण है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वस्तुतः मेधातिथि का भाष्य उनके सुधारवाद के भूतावेश का ही परिणाम है। वह मनु के अभिप्राय से कोसों दूर है। श्री सावरकर आदि ही नहीं, प्राचीनकाल से ही मेधातिथि को सुधारक पण्डित ही माना जाता रहा है। यही कारण है कि मनुस्मृति के प्रामाणिक टीकाकार कल्लूक भट्ट स्थान-स्थान पर 'मेधातिथि-भाष्य' का खण्डन करते हैं। मेधातिथि देवलों से भी अधिक प्रगतिशील सुधारक थे। श्री सावरकर की दृष्टि में उनके मन-लायक पूर्ण सुधारक मेधातिथि थे।

श्री सावरकर लिखते हैं : 'देवलस्मृति के पतित-परावर्तन आदि धार्मिक तथा राजनीतिक मोर्चे के महत्त्व का वर्णन मुसलमान लेखकों ने किया है : 'प्रवल हिन्दू-काफिरों के भय से हम अरवों के बाल-वच्चे, स्त्री-पुरुष, जंगल-जंगल मारे-मारे फिरते हैं। हमारे जीते गये सिन्ध-प्रान्त के अधिकांश भागों को पुनः जीतकर हिन्दुओं ने अपना राज्य स्थापित कर लिया। राजकीय मोर्चे पर ही हम अरबों को धूल चाटनी नहीं पड़ी, किन्तु दाहिर-राजा का कत्ल करने के वाद जिन हजारों हिन्दुओं को सौ वर्ष के परिश्रम से हमने धर्मभ्रष्ट कर मुसलमान वनाया था, हिन्दू स्त्रियों को दासी वनाकर मुसलमानों के घरों में घुसेड़ रखा, उस धार्मिक-मोर्चे पर भी हमारी वैसी ही दुर्गति हुई। हिन्दुओं में उत्पन्न क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण इस्लाम द्वारा भ्रष्ट किये गये स्त्री-पुरुषों ने फिर अपना काफिर हिन्दू-धर्म अपना लिया।" यद्यपि प्राचीन शास्त्रों के अनुसार पतित-परावर्तन की व्यवस्था है ही, तथापि बेरोक-टोक निस्सीम् निर्मर्याद शुद्धि द्वारा सवको हिन्दू-धर्म में श्रेणीभेद आदि के विना सर्वथा मिला लेना सुधारवाद का ही प्रभाव है वह सर्वमान्य क़भी भी नहीं रहा और न रहेगा।

सुधारक मेधातिथि

मेधातिथि की चर्चा करते हुए श्री सावरकरजी कहते हैं कि 'ईसवी सन् ८५० में होनेवाले मेधातिथि ने मुसलमानों के दुष्ट सशस्त्र आक्रमण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विभिन्न देशों की ईसाई-मिशनरियाँ आपस में एक दूसरे से लड़ती थीं और छल-कपटपूर्वक सैंकड़ों गिरोहों में ईसाइयत फैला रही थीं। मनचाहे अत्याचार कर उन्हें ईसाई बनानेवालों में सबसे प्रबल पादरी सेण्ट (सन्त) जेवियर (अक्षवीर्य) था। उसने अपने पुर्तगाल-बादशाह को लिखकर ईसाइयत के प्रचार में शासकीय अधिकारियों की सहायता प्राप्त की। वह ब्राह्मणों को अपने प्रचार में सबसे बड़ा बाधक मानता था। सरकारी अधिकारियों की मदद लेकर वह मठाधीशों, आचार्यों और बलवान लोगों की मरम्मत करता, मन्दिरों-मूर्तियों को तोड़ता और घोर अन्याय-अत्याचार कर ईसाइयत फैलाता था। अन्य लोग भी उसका अनुकरण करते थे। इस तरह ईसाई-राष्ट्रों ने दक्षिण समुद्र पर अपनी सत्ता स्थापित की, वे हिन्दचीन तक फैले। हिन्दू-धर्म अपनी गलतियों से कूपमण्डूक बना हुआ था। उसने समुद्रतट जाना ही मना कर रखा था। समुद्रयातुः स्वीकारः कलौ पञ्च विवर्जयेत्।

आगे वे कहते हैं। "उचित यह था कि विद्यारण्यस्वामी, छत्रपति शिवाजी, दुर्गादास राठौर, जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह, रामानन्द, चैतन्य आदि सन्त-महन्तों ने जो शुद्धिसम्बन्धी मोर्चे पर जो सशस्त्र जवाबी हमले का उपक्रम किया था, उस सशस्त्र आक्रमण को सतत जारी रखा जाता। मुस्लिम स्त्री-पुरुषों को हिन्दू बनाने का धूम-धड़ाका जारी रखते हुए, पुरानी रूढ़ियों को तिलांजलि देकर उसे उस समय के हिन्दुओं का युगधर्म बना डालना चाहिए था। पर दुर्भाग्यवश वैसा नहीं हुआ।"

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अत्याचार, अन्याय कर ईसाइयत फैलाने में ईसाई मुसलमानों से भी बढ़े-चढ़े थे। ईसाई और मुसलमान दोनों शक्तियों ने धर्म के नाम पर काला कलंक लगाया। आज भी वे छल-कपट से, गरीबों का अनुचित लाभ उठाते हुए हिन्दुओं को धर्म-भ्रष्ट करके ईसाई, मुसलमान बनाने में जुटे हुए हैं। प्राचीन काल से ही शास्त्रों में प्रायश्चित की व्यवस्था है। अतः भ्रष्टों को प्रायश्चित कराकर अपने धर्म, दर्शन तथा शास्त्रों का प्रचार कराना परमावश्यक है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवल, मेधातिथि की कोई प्रमाणिक नवीन व्यवस्था नहीं है। विद्याद्यारण्य स्वामी की भी कोई ऐसी व्यवस्था उपलब्ध नहीं है, जिनमें यह कहा गया हो कि 'हमें जाति-पाँति, वर्ण-व्यवस्था नहीं माननी चाहिए, सबके साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध करना चाहिए। जन्मना ईसाई, मुसलमान, तुर्क, मुगल, ईरानी, अंग्रेज, फ्रैंच, पुर्तगीज को ब्राह्मण, क्षत्रिय बना लेना और उनको अपनी बहन-बेटी दे देनी चाहिए।' अतः वैसे सुधारकों की कल्पना निर्मूल है।

चैतन्य, रामानुज, रामानन्द आदि की भी ऐसी कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। चैतन्य महाप्रभु का ग्रन्थ अभी भी जीवित है। उनके अनुयायी उनके भक्तिविषयक ग्रन्थों का पाठ करते हैं। स्वयं श्री सावरकर जी मानते हैं कि 'इस महापुरुष ने मुसलमानों से सशस्त्र बदला लिया' पर इसका उल्लेख तक उनमें नहीं है। उनके द्वारा मुसलमानों पर हुए सशस्त्र धार्मिक आक्रमण अथवा बड़ी बड़ी शुद्धियों की गाथा कहनेवाला एकआध वीरकाव्य भी उस समय के भाटों अथवा चारणों द्वारा रचा गया हो तो इस समय प्राप्त नहीं है। बहुजन-समाज को भी इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई कि वह उन स्मरणीय प्रसंगों की मौखिक चर्चा ही परम्परानुसार जारी रखता। ऐसी स्थिति में एक शास्त्रवादी को कहना पड़ता है कि वस्तुतः विद्यारण्य के समान ही रामानुज, रामानन्द, चैतन्यादि ने भी कोई धर्मविरुद्ध व्यवस्था नहीं दी। वैष्णव-धर्म या शैव-शाक्त धर्म में ईसाई अथवा हरिजन भी प्रविष्ट होकर भगवान्नाम जपें, भगवद्भक्ति करें, इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु वैदिक वर्णाश्रमधर्म में तो जन्मना शुद्ध वर्णों का ही सन्निवेश है।

यद्यपि श्री सावरकरजी ने मेधातिथि को बहुत बड़ा क्रान्तिकारी बताया और उनके आविर्भाव को हिन्दुओं का परम सौभाग्य कहा। किन्तु उन्हीं के वर्णन से प्रतीत होता है कि उनका कोई स्थायी प्रभाव समाज पर नहीं पड़ा। इसलिए लेखक के अनुसार वह समस्या ज्यों की त्यों बनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रही। छत्रपति शिवा, दुर्गादास, राजा जसवन्त सिंह आदि ने जो कुछ भी किया हो, परन्तु श्री सावरकर के अनुसार वह कार्य आगे नहीं बढ़ सका। न तो मुस्लिम स्त्री-पुरुषों को हिन्दू बनाने का धूम-धड़ाका और पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने का काम चला और उसे युगधर्म नहीं बनाया जा सका। इससे स्पष्ट होता है कि उक्त बातें ऐतिहासिक तथ्य न होकर अधिकांश-सुधारकों की कल्पना ही है। यदि किसी अंश में ऐतिहासिक भी हों तो शास्त्रवादी आस्तिक समाज की दृष्टि में उसका न तो तब कोई महत्त्व था और न अब है। आस्तिक तो शास्त्रानुसार शुद्धि तब भी चाहते और करते थे और अब भी करते हैं।

सिन्धु-पार अथवा समुद्र-पार जाने की निषेधसम्बन्धी कथा श्री सावरकरजी की अपनी मनगढ़न्त है। यह महमूद गजनी या मुहम्मद गोरी के आक्रमण या ईसाइयों के अत्याचारों के कारण प्रवर्तित नहीं हुई और न उसमें कहीं भूल ही है। **वस्तुतः यत्राऽसां विशामन्तरस्तद्गमयाञ्चकार। ....नान्तमियात्, न जनमियात्** (बृहदारण्यक-उपनिषद् १, ३) के अनुसार यह कहा गया है कि प्राण देवता ने वागादि देवताओं में से पाप्माओं को छुड़ाकर इन प्राची आदि दिशाओं के अन्त में खदेड़ दिया। वहाँ श्रौतस्मार्त धर्मनिष्ठ मनुष्यों और उनके निवासभूत भारतवर्ष को 'दिक्' मानकर उससे भिन्न देशों और तन्निवासी मनुष्यों को 'दिगन्त' या 'प्रत्यन्त' तथा 'विजन' माना गया है और उन्हें पाप्माओं का आश्रय मानकर, वर्णाश्रम-धर्मनिष्ठ को वहाँ जाना निषिद्ध किया गया है। इसीलिए नान्तमियात् न जनमियात् इन दो निषेधों से उस देश एवं उस जन दोनों का ही संसर्ग वर्जित किया गया है। आद्य शंकराचार्य, सुरेश्वराचार्य तथा आनन्द गिरि ने उक्त श्रुति का वैसा ही अर्थ किया है, जैसा कि हमने उपर कहा है।

इन्हीं श्रुतियों के अनुसार मनु ने भारत से भिन्न देशों को 'म्लेच्छ-देश' कहा है। 'जहाँ स्वभावतः कृष्णसार मृग विहरण करता है, वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यज्ञिय देश है, उससे भिन्न सब देश म्लेच्छदेश हैं। म्लेच्छदेशस्त्वतः परम् फिर एतान् द्विजातयो देशानाश्रयेरन् प्रयत्नत, यह मनु ने आग्रहपूर्वक कहा हैं: द्विजाति लोग यत्न करके ब्रह्मावर्त, आयावर्त, मध्यदेश आदि देशों में ही रहें। हाँ, वृत्तकर्शित होने पर शूद्र अन्य देशों में भी रह सकते हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उक्त वचन प्रक्षिप्त हों, मूल मनु के नहीं, क्योंकि आपके क्रान्तिकारी भाष्यकार मेधातिथि ने उन दोनों श्लोकों पर भाष्य लिखा है। यह बात पृथक् है कि उनका भाष्य मूल के विरुद्ध है और कलि के लिए ही नहीं, किन्तु यह निषेध सदैव के लिए है। तब भी हिन्दू त्रिसमुद्रा ही नहीं, सप्तसमुद्रा पृथिवी का अधिपति और सप्तद्वीपा भूमि का अधिपति था।

श्रीमद्भागवत आदि पुराणों के अनुसार मांधाता, दिलीप, पृथु, सुरथ आदि का अखण्ड भूमण्डल पर शासन था:

सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले। (दुर्गा-सप्तशती)

और ऋग्वेदकाल के भुज्यु प्रभृति नरेश तो अपनी अन्तरिक्षगामिनी शतारित्र नावों द्वारा दस्युओं पर आक्रमण करते रहे हैं। अश्वमेध तथा राजसूय के प्रसंग में दिग्विजय की यात्रा करते रहे हैं। विशेष-धर्म से सामान्यधर्म का बोध होता ही है। अतः पुक्त विशेष परिस्थिति में राजा तथा योद्धा सेनाएँ प्रत्यन्तों में भी जाकर राज्य-व्यवस्थापन करके, लौटकर प्रायश्चित्त कर लेते थे। समुद्रयातुः स्वीकारः कलौ पञ्च विवर्जयेत् इस वचन का अभिप्राय श्री सावरकरजी ने नहीं समझा। साथ ही उक्त वचन के साथ कलौ पञ्च विवर्जयेत् का अशुद्ध पाठ उन्होंने अपनी तरफ से जोड़ दिया है।

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

इस वचन का यह अन्तिम चरण है। इसका अर्थ यह है कि अश्वाम्भ, पल-श्राद्ध, संन्यास तथा देवर से सुतोत्पत्ति—इन पाँचों का कलि में वर्जन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करना चाहिए। 'समुद्रयातुः स्वीकारः' का अर्थ है कि प्रत्यन्त (विलायत)-यात्रा के लिए समुद्री नौका द्वारा यात्रा करनेवाले का प्रायश्चित्त करनें पर जाति में स्वीकार करना कलि में वर्ज्य है। इसी अर्थ का दूसरा भी वचन है।

समुद्रस्य तु नौयातुः शोधितस्याप्यसंग्रहः।

अर्थात् समुद्र-नौका द्वारा प्रत्यन्त-यात्रा करनेवाले का प्रायश्चित्त से शोधित होने पर भी, संग्रह करना कलिवर्ज्य है। इस प्रसंग में 'एष धर्मः सनातनः' आदि कोई वाक्य नहीं है, यह सब लेखक ने अपने मन से धर्म के प्रति घृणा व्यक्त करने के लिए जोड़ा है।

विष्णुपुरान आदि में भी भारत की भूमि को 'यज्ञभूमि' कहा गया है, मनु के अनुसार भी भारत यज्ञिय-भूमि है, भारतेत्तर द्वीप प्रत्यन्त, दिगन्त, म्लेच्छभूमि हैं। द्विजातिवों को प्रयत्न करके भारत में ही रहना चाहिए। नान्तमियात् न जनमियात् इस श्रुति के अनुसार प्रत्यन्त-देशों एवं तन्निवासियों से संसर्ग वर्जन करना चाहिए। यह निषेध अतिप्राचीन एवं सदा के लिए है। फिर भी अश्वमेघ-प्रसंग या कण्टक-शोधन, दस्युवधार्थ अपवादरूप द्वीपान्तरों की यात्राएँ होती थीं। इतर युगों में उस यात्री का प्रायश्चित्त द्वारा जाति में ग्रहण होता था, परन्तु कलि में प्रायश्चित्त द्वारा पारलौकिक शुद्धि होती है, लेकिन जातिग्राह्यता नहीं होती। यही उक्त कलिवर्ज्य का अभिप्राय है। कलि में अश्वमेध भी वर्ज्य है। दिग्विजयार्थ, दस्युवधार्थ प्रत्यन्त-यात्रा की स्थिति भी कलि में नहीं रह गयी, फिर भी दस्युवधार्थ क्षात्रधर्मानुयायी—गूजर, जाठ, मराठा, मद्रासी, सिख, गोरखों की हिन्दू-सेनाएँ जा सकती हैं। क्योंकि उक्त निषेध जन्मना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यवर्णों के लिए ही मान्य है। इस दृष्टि से आज भी दिग्विजय यात्री हिन्दू के लिए किसी देश में जाने की कोई रुकावट नहीं है। समुद्र-नौका प्रत्यन्तगमन के साधन का उपलक्षण है। अतः वायुयान आदि द्वारा भी समुद्र-यात्रा निषिद्ध ही है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस सम्बन्ध में हमारी 'प्रत्यन्त-गमन पर शास्त्रीयपक्ष' पुस्तक है। कुछ आदर्श वर्णों के लिए ही यह सीमित है।

आगे सातवें अध्याय में हिन्दू-पीडक टीपू सुलतान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि "मराठों ने दिल्ली के मुगलसाम्राज्य को उलट डाला, हिमालय से कन्याकुमारी तक कोई मुसलिम-सत्ता नहीं थीं। ऐसे समय में भा मैसूर के छोटे से रजवाड़े के अधीन रहकर भी हैदर अली मुसलमान अपने अधिकार पद पर वढ़ते-वढ़ते महत्त्वपूर्ण पद पर पहुँचा और अन्त में अपने मालिक राजा को हटाकर स्वयं वहाँ अधिकार कर बैठा। उसने मराठों पर भी चढ़ाई की, किन्तु मराठों ने उसकी ऐसी मरम्मत की कि आगे न वढ़ सका।

"इसने एकवार अंग्रेजों पर धावा बोल दिया। १८८२ में हैदर अली के मरने के बाद उसका लड़का टीपू सुल्तान बना। हाथ में सत्ता आते ही उसने हिन्दू-राजा का नाम, गाँव मिटाकर स्वयं को मैसूर के स्वतंत्र मुसलिम-राज्य का शासक घोषित कर दिया और एक आम-दरवार में यह घोषणा कर दी कि 'मैं सभी काफिरों को मुसलमान बनाकर ही दम लूंगा।' तुरन्त ही उसने हिन्दुओं को मुसलमान बन जाने का फरमान जारी किया और अधिकारियों का हुक्म दिया कि बलपूर्वक सभी हिन्दुओं को मुसलमान बनाकर, हिन्दू-स्त्रियों को पकड़कर रखैल बना लो, मुसलमानों में बाँट दो। गाँव-गाँव भीषण अत्याचार शुरू हो गये। अक्षम, असहाय, निरस्त्र, वाल, वृद्ध हिन्दुओं को घेर-घेरकर मार-मारकर भ्रष्ट किया गया। मुसलिम गुण्डों और मौलवी-मुल्लाओं ने गाँव-गाँव भ्रष्टीकरण की आग फलाकर त्राहि-त्राहि मचा दी। सारा मुसलिम-समाज टीपू का कृतज्ञ हो गया। विशेषकर, कर्नाटक से लेकर त्रावणकोर तक के सभा मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर उस अत्याचार में हाथ बँटाया।

"पूना में इसकी प्रतिक्रिया हुई। पेशवा के मुख्य फणनवीस नाना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ने मरहठा सरदारों को टीपू पर आक्रमण की आज्ञा दे दी। यह सुनकर टीपू ने आग-बबूला होकर नरगुंदा और फित्तूर, दो मराठी इलाकों पर आक्रमण किया। दोनों के अधीश्वर ब्राह्मण थे। वीरोचित्त वृत्ति से दोनों ने ढीपू का सामना किया। पूना की सहायता समय पर न पहुँचने के कारण दोनों की सेनाएँ टीपू की बड़ी सेना के सामने हार गयीं। दोनों के सेनापति भावे और पेठे पकड़े गये। उनको असह्य यातनाएँ दी गयीं। राजस्त्रियों की टीपू ने स्वयं अपने मुसलिम दस्तकों से विडम्बना करवायी। युवतियों, लड़कियों पर तरह-तरह के बलात्कार किये गये। राजघराने की सर्वोत्तम तरुणी को टीपू ने अपने जनानखाने में बन्द किया। धनी लिगांयतों और सामान्य नागरिकों को गुलाम बनाकर वह साथ ले गया।

"इस बीच मराठों की सेना ने उन राज्यों को फिर से जीत लिया। सरदार, पटवर्धन, फड़के वेहरे, होलकर, भोंसले की सेनाओं ने मुसलिम सेनाओं को मार-मारकर पछाड़ते हुए सारा-का-सारा कर्नाटक जीत लिया। टीपू का मैसूर तक पीछा किया। आखिर वह घिर गया! इसी समय अंग्रेजों ने टीपू को फँसा देख मौका साधा। वे भी टीपू पर टूट पड़े। मराठों की तीखी तलवारों से मुसलिम-सेना का शैतानी धर्मोन्माद उतरने लगा। उसका दम उखड़ता गया। हिन्दू-धर्मद्वेष्टा होने पर भी वह हिन्दू देवी-देवताओं की माला जपने लगा। एकाएक उसने हिन्दू मठ-मन्दिरों को दान देना आरम्भ कर दिया। मुसलमानों द्वारा तोड़े गये मन्दिरों को फिर से बनवाकर देवताओं की प्रतिष्ठा कराने लगा। ब्राह्मणों द्वारा भी मन्दिरों में पूजा-प्रार्थना करवायी। दान, दक्षिणा, अनुष्ठानों के बड़े-बड़े आयोजन कराये। शंकराचार्य महाराज का वहाँ सम्मान किया और उनसे राज्य पर आये संकट को टालने के लिए आशीर्वाद लिया। कांची क्षेत्र के हिन्दू-देवता की रथयात्रा में स्वयं टीपू सुलतान उपस्थित हुआ। उसने अपने हाथों आतिशबाजी सुलगायी, अपने खर्च से दोलोत्सव किया। फिर भी दो-तीन आक्रमणों में ही उसका सारा राज्य मराठों और अंग्रेजों ने छीन लिया। आगे चलकर टीपू मारा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गया। उसके राज्य का बँटवारा हुआ। त्रिवाँकुर, मैसूर का टीपू द्वारा जीता गया क्षेत्र वहाँ के राजघराने को लौटाकर उन्हें पुनः प्रतिष्ठित किया गया। टीपू का सारा राज्य नष्ट हो गया !

"पर हिन्दू-धर्म का उच्छेद करने के लिए मुसलमानों का जो धार्मिक सामाजिक हमला हुआ था—जिसमें लाखों हिन्दू स्त्री-पुरुष धर्मभ्रष्ट किये गये; हिन्दू-राष्ट्र, हिन्दू-पौरुष का मानभंग किया गया; जिसके कारण मुसलमानी धर्म, समाज और सत्ता निरन्तर बढ़ रही थी—उस सामाजिक अपमान का बदला लेने के लिए मराठों ने कुछ भी नहीं किया। मराठों के इस प्रत्याघात से मुसलमानी राजसत्ता तो चकनाचूर हो गयी, पर दो-तीन लाख भ्रष्ट किये गये हिन्दू स्त्री-पुरुष मुसलमानी दासता और उनके जनानखानों में सड़ते रहे; क्योंकि उनको शुद्ध कर तुरन्त हिन्दू नहीं बनाया गया। आगे चलकर उनमें भी हिन्दू बनने की इच्छा दूर हो गयी और अपने समान ही वे अन्य हिन्दुओं को भी मुसलमान बना लेना अपना कर्तव्य समझने लगे। उस समय सब अपने धर्म में लौटने को तैयार थे। टीपू की मुसलिम सल्तनत को दफनाकर सरदार पटवर्धन, होलकर की मराठा सेनापतियों की विजयी घुड़सवार सेनाएँ अपने-अपने रणक्षेत्र से 'हर-हर महादेव' का रणघोष करती हुई, भगवा-ध्वज फहराती हुई, विजय दुदुम्भी बजाती हुई, जिन नगरों-कस्बों से निकलती थी, वहाँ के लाखों भ्रष्टकर मूसलमान बने हिन्दू स्त्री-पुरुष और खासकर जिन हजारों स्त्रियों को रखैल-दासी बनाकर घरों में कैदकर रखा गया था, उनमें अनेक पतिता दे:खिता हिन्दू-कन्याएँ, कान्ताएँ थीं। उन सबको समझ में आ गया होता कि हिन्दुओं की विजय हुई और मुसलिमता का सत्यानाश हुआ ! वे खिड़कियों द्वारा और झोपड़ियों के रन्ध्रों से झांकने के लिए आ डटी होंगीं। हिन्दू-वीरों की विजय-शोभायात्रा के समय उन हजारों बहनों के हृदय में ऐसी आकांक्षा स्वाभाविक रूप से जगी होगी कि 'लो, वे आये हमारे हिन्दू-धर्म के भाई ! इन अत्याचारी मुसलमानों की छाती रौंदते हुए आखिर हमारे छुटकारे के लिए आ ही पहुँचे। किन्हीं-किन्हीं के सगे बाप, भाई,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पति-पड़ोसी आदि प्रत्यक्ष भी दिखाई पड़े होंगे।

"उस समय गाँव-गाँव में संचार करती विजयी हिन्दू-सेनाएँ चाहतीं तो इन हिन्दू-अबलाओं का राह चलते उद्धार कर दिया होता; क्योंकि उस समय मुसलिम-समाज में सामना करने की कोई हिम्मत न थी। उस समय उस सेना के आह्वान-मात्र से समस्त हिन्दू भाई तथा बहनें तत्काल सैनिक-विभाग में आकर मिल गयी होतीं। लेकिन शुद्धि का विचार ही नहीं आया। मराठा सैनिकों, शंकराचार्यों पूना, के पेशवाओं, सतारा-कोल्हापुर के छत्रपतियों में से किसी के मन में सहज शुद्धीकरण की बात आयी ही नहीं! मुसलमान राक्षसों के वन्दीखाने में पड़ी हज़ारों अपनी माँ-बहनों को वैसा ही तड़पते छोड़ आगे बढ़ जाने में किसी को शर्म न आयी! वे भ्रष्ट हिन्दू स्त्री-पुरुष निराश हो गये। अत्याचारी मुसलमान अपने अत्याचारों का दण्ड न पाकर पुनः आश्वस्त होकर निर्भय हो गये। अब सभी पुराने लेखों, पत्रों का प्रकाशन, मुद्रण हो जाने से इन सब अत्याचारों का पूरे-पूरे प्रमाण मिल रहे हैं।

खर्डा के विजय-युद्ध में हुई घटना का उल्लेख एक पत्र में यों किया गया है। मराठा राजसत्ता के सेनापति श्री हरिपन्त फड़के ने मराठी-साम्राज्य के कर्णधार नाना साहब को सूचित किया कि 'टीपू ने अपनी हार के बाद जो करार किया था, उसका पालन करने के लिए आश्वासन के के रूप में उसने अपने दो पुत्र मराठा अंग्रेज सेनापति के पास बंधक (धरोहर) के रूप में रहने के लिए भेजे।' यह लिखकर शायद वे यह जानना चाहते थे कि मराठों नें शत्रु को कितना दीन-हीन, लाचार कर डाला। फिर उन्होंने आगे लिखा कि 'लार्ड कार्नवालिस ने वे दोनों पुत्र मेरे पास भेजे। मैंने (हरिपन्त ने) जब उन्हें देखा तो वे 'भूख-भूख' की रट लगा रहे थे। मैंने उन्हें पास के तम्बू में भेजकर भरपेट भोजन करने की आज्ञा दी। कुछ देर बाद उन्हें अंग्रेजी शिविर में कार्नवालिस के पास पहुँचा दिया।

"इस घटना से सन् १७०० के आरम्भ के दस वर्षों के आस-पास पंजाब के दसवें गुरु श्री गोविन्दसिंहजी के पुत्रों का बरबस स्मरण हो आता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। वे दोनों बारह वर्ष से कम आयु के ही थे। मुसलमानों ने अपने धर्म के अनुसार उसके साथ कैसा व्यवहार किया और टीपू सुलतान के दो पुत्रों के मराठों के हाथ लगने पर भी उन्होंने अपने धर्माचार के अनुसार उनसे उतना करुणापूर्ण व्यवहार किया।

"इधर गुरु गोविन्दसिंहजी के दोनों पुत्रों के अपने चंगुल में फँसते ही उनसे प्रश्न किया गया : 'क्या तुम मुसलमान बनते हो? यदि बनते हो तो प्राण-दान और जो कुछ चाहो, दिया जायगा, अन्यथा कुछ भी नहीं।' बच्चों ने उत्तर दिया : 'हम मुसलमान नहीं बनेंगे, प्राण जाते हों तो चले जाये।' इतना कहते ही राक्षसी न्याय ने हुक्म दिया : 'बच्चों को तुरन्त दीवाल में चुनवा दो!' और वे जिन्दा दीवाल में चुने जाने लगे। एक-एक ईंट जुड़ती और बच्चों से वही प्रश्न पूछा जाता। हरबार बालक यही उत्तर देते : 'मुसलमान नहीं बनेंगे!' दोनों पर अन्तिम ईंटें चढ़ीं और सांस बन्द हो गयी! आज भी जब कोई असली हिन्दू उस स्थान पर उस वातावरण में प्रवेश करता है तो उसके कानों में 'मैं मुसलमान नहीं बनूँगा, नहीं बनूँगा, भले ही हम हिन्दू, हम सिख मृत्यु का वरण कर लेंगे के स्वर गूंजने लगते हैं।

"मान लें कि टीपू के हाथ में पेशवा के दो पुत्र पड़े होते, तो टीपू हमारे हिन्दू-हृदय सेनापति फड़के की तरह उन्हें खिला-पिलाकर पेशवाओं के पास वापसी कभी नहीं भेजता। इस कार्य को उसने अपने धर्म के विपरीत और नामर्दी का लक्षण समझा होता। वह तो अपनी परम्परा के अनुसार उन्हें दीवारों में चुनवा देता या हाथी के पैरों तले कुचलवा डालता। लेकिन हिन्दू सद्‌गुण-विकृति के कारण ऐसा न कर सके!

"वस्तुतः "संकटग्रस्त शत्रु पर आक्रमण न करो, रथी से रथी, तलवारिया से तलवारिया ही लड़े। वह शत्रु बेहोश हो तो उस बेसुध शत्रु को होश में आने दो'—यह रणनीति महाभारत-काल में उचित रही हो। कारण युद्धरत दोनों दल उस नियम का पालन करते थे। रणनीति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का पालक विवेक के अनुसार चाहिए।

"इस तरह खर्डा की ऐतिहासिक लड़ाई में जो १७९५ में हुई, हिन्दू-छत्रपति के मराठों वीरों ने निजाम की मुसलिम सत्ता को पस्त कर दिया, परन्तु सद्‌गुण-विकृतिरूप असाध्य रोग के कारण वे स्वयं खतरे में पड़ गये। रणनीति के दाँव-पेच में मराठों ने निजाम को निर्जन और निर्जल देश में घेर लिया। उसकी विशाल सेना को रसद-पानी मिलना असम्भव हो गया। पानी के अभाव में मुसलिम सिपाही डावरों का पानी पीने लगे, जहाँ जानवर भी नहीं पीता होगा। निजाम की आँखों में पानी आ गया, किन्तु पीने का पानी नहीं मिला। उधर मराठों की तोपों की गड़गड़ाहट से आकाश गूँजने लगा। लेकिन 'रणांगण में मूर्छितावस्था में पड़े होने के कारण उस पर हथियार न चलाना चाहिए, उसकी सहायता करनी चाहिए' हिन्दुओं की उदारता के पुरातन पागलपन की इस लहर का पेशवाओं के मन्त्रिमण्डल पर भी एकाएक हमला हुआ: अपने मुख्य शत्रु निजाम को जो प्यासे मरे जा रहे थे, जिन्दा कैद कर लेने और सारी सेना को नष्ट कर देने का मौका हाथ में आ जाने पर भी 'क्षत्रियोचित दया दिखाना एक सच्चे वीर का कर्त्तव्य है, ऐसे करुणपूर्ण विचार से पेशवा ने अपनी सेना के लिए संगृहीत पानी में से निजाम और उसके कुटुम्बियों के लिए प्रर्याप्त पानी की व्यवस्था कर दी, और सो भी ऐन जोर-शोर की लड़ाई के बीच! यही कमी, वीररूप भूषण में सद्‌गुण-विकृति का नमूना है।

"इस नीति से हिन्दुओं का संख्यावल को हानि हुई। भूक्षेत्र की भी हानि हुई। मराठों की जीत के बाद भी मुसलिम जायदादें मुसलिम नागरिकी ही बनी रहीं। पेशवाओं के शासन में पूना, सतारा, कोल्हापुर, बड़ौदा, नागपुर, देवास, धार, इन्दौर, ग्वालियर, जोधपुर, मैसूर, उदयपुर, अमृतसर और लाहौर तक हजारों-हजारों की मुसलिम-आबादी भरी पड़ी थीं और उन सबको मुसलिम-स्वामित्व प्राप्त था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

"वास्तव में राक्षस से लड़ाई जीतनी हो तो उससे सवाया राक्षस बनकर ही लड़ना चाहिए। यदि इसलामी धर्मसत्ता को धूल में मिलाने के लिए महाराष्ट्रीय वीरों को आदेश पत्र मिला होता और यह भी आदेश निकला होता कि 'ऐसे हिन्दू-स्त्री-पुरुषों को, जो मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट होकर मुसलमान बने हैं, एक विरोधन-शिविर में रखकर, उनके खान-पान जीवन-यापन में कोई कमी न रहती और प्रत्येक ग्राम के मुसलिम घर के ऐसे भ्रष्ट करनेवाले मुसलमान स्त्री-पुरुषों को वेड़ी-ठोककर कारागृह में बन्द किया जाता और उनके घरों में बन्दी हिन्दू बाल-बालिकाओं को मुक्तकर निरोधन-शिविर में भेज दिया जाता। मुसलिम तरुण सैनिकों को पकड़कर वेड़ियाँ ठोक दी जाती और शुद्धि सप्ताह का आयोजन कर निरोधन-शिविर के सभी स्त्री-पुरुषों को शुद्ध कर लिया जाता।

"जैसे टीपू ने हिन्दू-स्त्रियों को मुसलमान बनाकर मुसलिम सैनिकों में बाँटा था, वैसे ही मुसलमानों की सुन्दर तरुण-स्त्रियों को हिन्दू बनाकर मराठे सैनिकों से विवाह करा दिया जाता और अत्याचारी राक्षसों को एक-एक कर उनके अत्याचारों का वदला उससे भी कोटिगुणित क्रूरता से चुकाया जाता तो उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र फैल जाती। परन्तु यहाँ तो यह धारणा बनी थी कि जो जन्मता हिन्दू नहीं, उसे गंगास्नान कराये भी तो वह जातिवन्त हिन्दू कैसे वन सकता है? कारण जाति तो जन्म से ही निश्चित होती है। ब्राह्मणादि ही नहीं, मेहतर, गोंड़ और भील भी जन्मजात मुसलमान के हिन्दुत्व स्वीकार कर लेने पर उसको जन्मना जाति में मिलाने को तैयार नहीं था, पंक्ति में विठलाने को तैयार नहीं था, जन्मना जात म्लेच्छ-स्त्री से विवाह करने को तैयार नहीं था। इसे वह असम्भव और अधर्म मानता था। इसी मान्यता के कारण हिन्दू-समाज शुद्धि न कर सका।' अच्छा हुआ कि हिन्दू-नेताओं ने शुद्धिबन्दी की तरह राज्यबन्दी की घोषणा नहीं की। अन्यथा एकबार मुस्लिम-राज्य सत्ता स्थापित होने पर पुनः उसको हिन्दू-राज्य भी न वना पाते!

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

"मुस्लिमों से पदाक्रान्त होकर भी स्पेन ने (जब आगे चलकर मुसलमान आपस में लड़ने लगे तब), फ्रांस की सहायता और पोप के प्रोत्साहन से स्पेन के ईसाइयों ने पुराने राजवंश के नेतृत्व में मुसलिम-सत्ता के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया और १५वीं शती में ईसाइयों ने मुसलिम-सत्ता उखाड़ फेंकी। ईसाइयों ने मुसलिम धर्म-सत्ता को नष्ट कर दिया; क्योंकि उनके यहाँ रोटी-बन्दी, बेटी-बन्दी, शुद्धि-बन्दी नाम की कोई बेड़ियाँ नहीं थीं। उन्होंने 'बपतिस्मा' देकर फिर से सबको ईसाई बना लिया। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि स्पेन में किसी मुसलमान मनुष्य एवं मस्जिद का अस्तित्व ही न रहने पायेगा। शासन की ओर से अवधि निश्चित कर दी गयी कि 'इतने दिनों के भीतर सब मुसलमान ईसाई बन जायें अथवा परिकर-सहित स्पेन से बाहर हो जायें। जो ऐसा न करेंगे, उन सभी मूसलमान स्त्री-पुरुषों के सिर धड़ से अलग कर दिये जायेंगे।' स्पेन को जीतकर मुसलमानों ने ईसाई जनता के साथ ऐसा ही व्यवहार किया था, इससे भी अधिक क्रूर अत्याचार किये थे। तब राजपथों और गली-कूचों में मुसलमानों ने ईसाई-रक्त के नाले बहाये थे तो अब ईसाई लोग मुसलमानों के खून के नाले बहाने चले। उक्त अवधि बीतते ही ईसाइयों ने देश के सभी मुसलमानों को समाप्त कर दिया और स्पेन मुस्लिम-विहीन हो गया! 'स्पेन' बना रहा, पर 'मोरक्को' नहीं बना। पोलैण्ड, बल्गेरिया, सर्विया, यूनान आदि सभी ईसाई-देशों में मुसलमानों की यही दुर्दशा हुई। सबने मुसलमानी राज्य और धर्म से दबे अपने देश को स्वतन्त्र कर मुसलिम-विहीन बना दिया!"

लेखक वीर सावरकरजी भी मन से हिन्दुस्तान को वैसा ही मुसलिम-हीन और शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, यह ठीक है। परन्तु परिस्थितियाँ सर्वत्र एक-सी नहीं होतीं। धर्म-भेद शैवों, वैष्णवों, शाक्तों; सोरों और गाणपत्यों में भी होता है, पर उनमें एक दूसरे की रोटी-बेटी में धर्मनाश का प्रश्न नहीं उठता। इसी प्रकार ईसाई, मुसलमानों में धर्म-भेद होने पर भी उनके खान-पान तथा स्त्री-सम्बन्ध से धर्म-नाश का प्रसंग नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आता। अतः वे वैसा-का-वैसा बदला चुका सकते थे। पीछे कहा ही जा चुका है कि जैसे कुत्ता मनुष्य को काट खाता है, वैसे मनुष्य उससे बदला नहीं चुका सकता; क्योंकि बदला चुकाने के साथ अपने धर्म-कर्म, आचार विचार को भी देखना पड़ता है। एक विवेकशून्य व्यक्ति ने किसी के घर से थाली माँगकर उसमें मांस रखकर खा लिया, तो उससे अधिक दूसरे अविवेकी ने बदला चुकाने की दृष्टि से कहा कि 'मैं उसके घर की थाली में विष्ठा रखकर उसका बदला चुकाऊँगा।' क्या यही उससे बदला चुकाना है ? अपने भ्रष्ट होने का कुछ भी विचार नहीं ?

यदि सुधारकों के अनुसार हिन्दू में ब्राह्मण आदि कोई जाति मान्य नहीं और कोई भी व्यक्ति सरलता से मुसलमान, ईसाई बनकर भी पुनः हिन्दू-जाति में मिल सकता तथा जन्मजात ब्राह्मण आदि से भिन्न अरब, तुरक, मुगल, अंग्रेज आदि भी ब्राह्मण-क्षत्रिय हो सकते, तो फिर दीवारों में चुनवाने जाने पर भी, अन्तिम ईंट चढ़ने तक भी 'हम मुसलमान नहीं बनेंगे, नहीं बनेंगे, मृत्यु को गले लगायेंगे, हम हिन्दू, सिख, क्षत्रिय हैं' इस प्रकार वीरोचित सिंहनाद क्या कभी सुनने को मिलते ?

ठीक इसी तरह कुछ गोमांसभक्षियों ने विवेक खोकर हमारे भाई-बहनों को धर्म-भ्रष्ट किया तो उसके बदले में हम उनको भीषण से भीषण दण्ड दें। अपने भाई-बहनों को अपनी परम्परा के अनुसार छीनकर शास्त्रानुसार शुद्ध करें। स्थिति सामान्य होने पर उन्हें शुद्ध कर सर्वथा मिलाया भी जा सकता है। यदि वैसी स्थिति न हो तो भी शुद्धकर हिन्दू-समाज में नवीन श्रेणी का निर्माण करके उनमें उन्हें रखा जा सकता है। उनका रोटी-बेटी का सम्बन्ध उसी श्रेणी में हो, अन्य सब व्यवहार समान रूप से हिन्दू-सनाज मे किये जायें। सारांश, शास्त्रीय अधिकार के अनुसार ही वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक और धर्म-उपासनाओं की व्यवस्था हो सकती है।

हिन्दू-समाज में बहुत-सी श्रेणियाँ और जातियाँ हैं, सबका सबसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं होता। ब्राह्मण ब्राह्मण सब समान होते हुए की कान्यकुब्ज, सरयूपारीण, गौड़, मैथिल, उत्कल का तथा उन सबका पञ्चद्राविड़ों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं होता। इस प्रकार हिन्दू हिन्दू समान होने पर भी विभिन्न ज्ञातियों का रोटी-बेटी का सम्बन्ध पृथक् पृथक् रहता ही है।

ईसाई, मुसलमान भी धर्माधर्म का निर्णय अपने धर्म-ग्रन्थों बाइबिल, कुरानादि के आधार पर कहते हैं और उसमें मनमामी रद्दो-बदल की कल्पना भी नहीं करते: वेदों की स्थिति तो उनसे भी अत्यधिक दृढ़ तथा पवित्र है। प्रायः सभी धार्मिक अपने-अपने धर्म का ईश्वरीय धर्म-ग्रन्थ के अनुसार निर्णय करते हैं। कारण धर्म-अधर्म की जानकारी और उनके फल देने की क्षमता ईश्वर में ही होती है। वही अनन्त ब्रह्माण्ड तथा उनके अनन्तानन्त प्राणियों तथा उनके अनन्तानन्त जन्मों तथा अनन्तानन्त कर्मों को जान सकता है। प्रकृति जड़ है, जीव अल्पज्ञ होते हैं। अतः उक्त ज्ञान तथा क्षमता उनमें नहीं होती। यदि कर्मफल भी जीव के हाथ में हो तो कोई भी जीव अपने अच्छे कर्मों का फल भोगना चाहेगा। फिर अनिष्ट कर्मों का फलभोग हो ही नहीं सकेगा।

जो फल देने की सामर्थ्य रखता है, वही धर्म में रद्दो-बदल कर सकता है। किसी नेता या नेतृसमूह या पार्लमेण्ट या कार्यपालिका या शासक में वैसा ज्ञान अथवा सामर्थ्य नहीं है। महात्मा गाँधी, पण्डित नेहरू, लेनिन, कार्लमार्क्स या हिटलर, राष्ट्रपति विलसन अपने किन-किन कर्मों के अनुसार कहाँ पर हैं, कैसे हैं, कौन फल भोग रहे हैं—यह किसी राष्ट्रीय नेता या पार्लमेण्ट को विदित नहीं। श्री सावरकर, श्री गोलवलकर आदि सुधारक धर्म में सुधार करना चाहते हैं। धर्म और अधर्म पारलौकिक सुख-दुःख एवं उन्नति-अवनति के साधन होते हैं। खेती-बारी, वाणिज्य, शिल्प आदि का फलाफल लौकिक प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों से विदित होता है। अतः उन्हीं प्रमाणों के आधार पर उनमें रद्दो-बदल की बात

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सोची-समझी जा सकती है। परन्तु अश्वमेध, राजसूय, ज्योतिष्टोम आदि का फलाफल प्रत्यक्षादि से विदित नहीं होता। सीमित सुरापान पाप है या पुण्य, परस्त्रीगमन पुण्य है या पाप ब्राह्मण-कन्या की मुसलमान से या मुस्लिम-कन्या की ब्राह्मण से शादी पुण्य है या पाप, यह प्रत्यक्ष आदि से सर्वथा अज्ञेय है। भाई-बहन में भी शादी होने में कोई लौकिक हानि-लाभ दृष्टि नहीं है। यह सर्वज्ञ ईश्वरीय वेदों एवं तदनुसारी आर्षग्रन्थ के अनुसार ही पुण्य-पाप का लाभ होता है। उस धर्म में तभी उलट-फेर हो सकता है जब ईश्वर भी उस उलट-फेर को स्वीकार करके मान्यता प्रदान करे। सहस्रों नेताओं, करोड़ों मनुष्यों, सहस्रों पार्लमेण्ट के मान्यता प्रदान करने पर भी ईश्वरीय धर्म-अधर्म में उलट-फेर नहीं हो सकता; क्योंकि फल देने की क्षमता ईश्वर में ही है, नेता आदि में नहीं। अतएव उनकी मान्यताओं का कोई मूल्य नहीं। फल देने की क्षमतावाले परमेश्वर की मान्यता से ही धर्माधर्म की व्यवस्था हो सकती है। जबतक उसकी मान्यता की मुहर नहीं लग जाती तबतक नेताओं के किसी उलट-फेर को धार्मिक महत्त्व प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए देवल, मेधातिथि, विद्यारण्य ही नहीं, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, कणाद, कपिल आदि भी धर्म बनाने बिगाड़ने में समर्थ नहीं हैं। ईश्वर की मृत्यु हो या ईश्वर बदल जाय किंवा वह पराजित हो जाय या स्वयं अपनी भूल मान ले, तभी ईश्वरीय धर्म को रद्दो-बदल की बात सोची जा सकती है। लेकिन ईश्वर नित्य, अमर, अजेय, अपरिवर्तनीय एवं सर्वज्ञ है, अतः उसके धर्म में परिवर्तन करने की क्षमता किसी में नहीं है।

[illegible] चुका है कि स्मृतियों, पुराणों ने स्वतन्त्र रूप से कभी भी धर्म का निर्माण या परिवर्तन नहीं किया। अनादि वेदों के अनुसार ही आपत्ति-सम्पत्ति-भेद से या कृत, कलि आदि भेदों से कहीं परिवर्तन हैं। श्रुतिमूलकता का अनुमान करके ही प्रत्यक्ष श्रुति से अविरुद्ध स्मृति का प्रामाण्य होता है। अतः शास्त्रप्रमाण्यवादी सर्वथा अक्षुण्ण रूप से शास्त्र का आदर करते हैं और करेंगे। इसी आधार पर उनके स्पुत्य त्याग-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बलिदान इतिहास के स्वर्णपृष्ठों में अंकित हैं।

प्रतिशोध और बदला चुकाने का भी अपना असाधारण महत्त्व है, फिर भी अन्त में धर्मविधान का उद्देश्य बदला चुकाना न होकर अपराधी की आत्मशुद्धि ही होता है। अन्त प्राणिमात्र की समानता, स्वतंत्रता तथा भ्रातृता का व्यवहार ही अभीष्ट है। कारण प्राणिमात्र परमेश्वर की सन्तान है। अतएव सच्चिदानन्द ईश्वर का चेतन, अमल, सहज सुखराशि अंश ही है। जैसे आकाश से गिरनेवाला जल स्वच्छ ही होता है, पर शुभ-अशुभ भूमि के संसर्ग से ही उसमें शुद्धि-अशुद्धि आती-जाती रहती है।

भूमि परत भा डाबर पानी। जिहि जीवहि माया लपटानी॥

सावन-भादो के दिनों में गंगा का पानी भी मटमैला हो जाता है, पर सदा वैसा ही नहीं रहता। निर्मली बूटी से वह फिर से निर्मल हो सकता है। कभी का डाकू बाल्मीकि भी कालान्तर में महर्षि बाल्मीकि भी बन सकता है।

हिन्दुओं में, ब्राह्मणों में भी रावण जैसे हो सकते हैं, क्षत्रियों में वेन हो सकते हैं। मुसलमानों में भी कई लोग अच्छे होते हैं। ईसाईयों अंग्रेजों में भी कई न्यायशील, निष्पक्ष, ईमानदार होते हैं। महाभारत में एक धर्मशील न्यायनिष्ठ दस्यु का वर्णन मिलता है। कौरवों ने पाण्डवों को लाक्षागृह में दग्ध करने की साजिस की थी, भीमसेन को विष प्रदान भी किया था, पाण्डवों की पत्नी को भी भरी सभा में नग्न करने की चेष्टा की थी। पाण्डवों ने उसका बदला अवश्य लिया, परन्तु ठीक उसी रूप में नहीं। अन्तिम विजय सत्य की होती है, अनृत की नहीं। अतएव रावण और दुर्योधन की विजय नहीं हुई, राम और युधिष्ठिर की ही विजय हुई। अखण्ड शास्त्र-धर्मनिष्ठा के कारण ही हिन्दू-शास्त्र, हिन्दू-धर्म आज भी सुरक्षित है। इससे पुराने कोई भी धर्म आज जीवित नहीं। इतनी पराधीनता तथा विपत्तियों की घनघोर घटा से सूर्य के समान बाहर निकल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर आज भी वह विश्व को ज्योति प्रदान कर रहा है। आपत्तियाँ, परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, किन्तु ईमानदारी-बेइमानी, नृशंसता-अनृशंसता की चर्चा चलती ही रहती है।

गुरु गोविन्दसिंह के लड़कों के साथ मुसलमानों का दुर्व्यवहार सर्वत्र निन्दित रहेगा, टीपू के लड़कों के साथ हरिपन्त फड़के का व्यवहार सत्पुरुषों में सदैव प्रशंसनीय रहेगा। गुरु गोविन्दसिंह के लड़कों की धर्मनिष्ठा और त्याग-बलिदान की निष्ठा आपके (श्री सावरकर के) अनुसार भी अत्यन्त प्रशंसनीय है। मायाचारो मायाया वर्तितव्यः' की नीति भी भारतीय नीति ही है। परन्तु उससे भी ऊँची नीति है 'दुर्जन को सज्जन बनाओ, सज्जन को शान्ति दो, शान्त पुरुष मुक्त हो और मुक्त अन्य लोगों की मुक्ति के मार्ग में लग जायें :

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तस्त्वन्यान विमोचयेत्॥

श्री प्रह्लाद भगवान् से कहते हैं 'विश्व का स्वस्ति (कल्याण) हो, खल की खलता मिटे, उसे मनःप्रसाद मिले। सब आपस में एक दूसरे का शुभ-चिन्तन करते हुए शोषक न होकर पोषक बनें, भक्षक न होकर रक्षक बनें। सब एक दूसरे पूरक होकर वर्ग-समन्वय, श्रेणी-सामंजस्य, जातियों व्यक्तियों के सामंजस्य के लिए प्रयत्नशील हों। सबका मन भद्रदर्शी हो, सबकी पवित्र प्रज्ञा अधोक्षज भगवान् में प्रतिष्ठित हो :

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि मिथः शिवं धिया।
मनश्च भद्रं भजतामधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

भगवान् वेद का भी यही आदेश है कि दान से अदान को, अक्रोध से क्रोध को, सत्य से असत्य को जीतो : दानेनादानमक्रोधेन क्रोधन् (सामवेद)।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पर यह सब होते हुए भी सत्य अहिंसा के नाम पर असुरों की कुटनीति का शिकार बनना भी सर्वथा निन्द्य है। दूसरों पर अन्याय-अत्याचार करना पाप अवश्य है, पर दूसरों के अत्याचार-अन्याय का शिकार बन जाना है महापाप ! मारना पाप है, तो मार खाना उससे अधिक पाप है : जबतक संसार के अन्य लोग अहिंसा, दया, क्षमा आदि सात्त्विक गुणों को नहीं अपनाते तबतक कोई साधु-पुरुष अपनी साधुता के कारण दुष्टों की कूटनीति का शिकार हर्गिज नहीं बनना चाहिए।

असल में बहुत दिनों से भारतीय दर्शन, धर्म नीति सम्बन्धी सद्ग्रंथों का अध्ययन-अध्यापन शिथिल होने से शास्त्र तथा धर्म के प्रति श्रद्धा भी शिथिल हो गयी। सम्भव है, उस मुसलमानी अत्याचार-काल में वे लोग शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त के लिए प्रस्तुत न हुए हों अथवा भिन्न श्रेणी में रहना पसन्द न किये हों, तभी वे मुसलमान रह गये होंगे। अन्यथा शास्त्रीय व्यवस्थानुसार तो हिन्दू-समाज के भीतर श्रेणिभेद से अन्त्यज, चाण्डाल और मुसलमान तक को भी रहने के लिए स्थान है ही। अन्यथा आप सुधारकों के अनुसार देवल के मत से म्लेच्छों द्वारा गर्भिणी स्त्रियों के भी ग्रहण की व्यवस्था थी ही। मेधातिथि, आपके अनुसार, देवल से भी अधिक उदार थे। उन्हीं के द्वारा मुसलमान स्त्री-पुरुषों को भी, आपके अनुसार, हिन्दू-जाति में समरस कर लिया जाता। आपके अनुसार उनका प्रादुर्भाव ८००–९०० सन् में हो ही चुका था।

पुनश्च मेहमूद गजनी, मुहम्मद गोरी आदि के आक्रमण से लेकर १८वीं सदी तक ईसाई-मुसलिम मोर्चों पर इस शुद्धि का काम क्यों नहीं हुआ और फिर टीपू को समाप्तकर पेशवाओं ने भी उस समय मुसलिम स्त्री-पुरुषों को हिन्दू क्यों नहीं बना लिया ? अतः कहना होगा कि उनका शास्त्रवादी समाज पर असर न होकर कुल सुधारकों पर ही था। वेदादि प्रामाण्यवादी विद्वानों की दृष्टि से भी प्रायश्चित्त आदि व्यवस्था अवश्य हो सकती थी, परन्तु उधर सुधारकों की प्रवृत्ति नहीं थी। जिनको यथासमय

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रायश्चित्त करने का अवसर मिला, वे पूर्ण शुद्ध होकर समाज में मिले। जिनके लिए वैसा अवसर न मिला, कालातिक्रमण के कारण उन्हें श्रेणिभेद में रखना अनिवार्य था, वह उन्हें स्वीकार न हुआ होगा।

आक्रामक शत्रु निजाम को विपत्ति के समय पानी देकर अनुग्रह करनेवाले, बेहोश-निःशस्त्र शत्रु पर आक्रमण और शस्त्र न चलानेवाले मराठा-वीरों ने अपनी परम्परा की ही रक्षा की है। वैसा न करने पर शत्रु अनायास वशीभूत हो सकता था, यह ठीक है। किन्तु जो शक्तिशाली सशस्त्र, सावधान शत्रु को भी नीचा दिखा सकता है, हरा सकता है, उसे इस कमजोरी की प्रतीक्षा की क्या आवश्यकता थी ?

महाभारत में भी मूर्च्छितावस्था में पड़े शत्रुओं पर प्रहार न करना, निःशस्त्र पर शस्त्र न चलाना पाण्डवों की नीति रही। कौरवों में गिने-चुने भीष्म, द्रोण आदि ही इसे मानते थे, अन्य लोग नहीं। अतएव एक बालक अभिमन्यु पर सात-सात महारथों के आक्रमण कर धर्म-नीति का पालन नहीं किया। फिर भी

हिंस्रः स्वपापेन विहिंस्यते किल,
साधुः समत्वेन भयात् प्रमुच्यते।

हिंस्र प्राणी अपने पापों से स्वयं मारा जाता है और साधु-पुरुष समत्व के माहात्म्य से भयविमुक्त हो जाता है।

अन्त में समन्वय एवं सामंजस्य का मार्ग ही अपनाना पड़ता है। भगवान् परशुराम ने पिता का बदला चुकाने के लिए २१ बार सारी पृथ्वी को क्षत्रियविहीन बनाकर, उनके रक्त से अनेक महान् सरोवर भरकर उनसे तर्पण किया था :

त्रिसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां पुरा। (महाभारत ३.५८.४)

श्रीरामचन्द्र ने ऋषियों की हत्या करने का बदला लेने के लिए प्रतिज्ञा की थी :

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निशिचर-हीन करौं मही, भुज उठाई प्रन कीन्ह।
सकल ऋषिन के आश्रमनि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

फिर भी आखिर विभीषण और उसके साथी अनेक राक्षसों को अपवादरूप से सुरक्षित करना पड़ा। परशुराम को भी इसी तरह अपवाद-रूप में क्षत्रियों को छोड़ना पड़ा, तभी तो २१ बार उनकी वृद्धि हो सकी और तभी दशरथ आदि रघुवंशी नरेश बच सके। छत्रपति शिवाजी आदि के यहाँ भी जुल्फे खाँ आदि कुछ ईमानदार मुसलमान सुरक्षित थे ही आधुनिक युग में भी रफी अहमद किदवई साहब जैसे भी मुसलमान आदरणीय कोटि में रहे हैं। नोआखाली के उपद्रव के प्रसंग में भी कई ईमानदार मुसलमानों ने अपने प्राणों को खतरे में डालकर भी हिन्दुओं की रक्षा की ही थी।

इस विषय को पूर्ण करने के पूर्व वीर सावरकर को निबन्धकार मेधातिथि के तथाकथित 'सुधारवादी' होने की जो भ्रान्त-धारणा हुई है, उसे दूर करने के लिए मेधातिथि के वास्तविक स्वरूप का भी सप्रमाण उल्लेख अनुचित न होगा।

मेधातिथि वर्ण-जाति के कट्टर पक्षपाती

मेधातिथि प्राचीन परम्परा से किसी अंश में कुछ ३१ मतभेद रखते हुए भी वर्णाश्रम धर्म, जाति-पाँति, भोजन-विवाह आदि के सम्बन्ध में इतर आस्तिकों के समान ही व्यवस्था मानते थे। आश्चर्य है कि श्री सावरकर ने मेधातिथि के नाम उच्छृंखल सुधारवाद का कैसे समर्थन किया।

मनुस्मृति की टीका लिखते हुए मेधातिथि ने भी वर्णाश्रम-व्यवस्था को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि स्वकर्मस्थ तीनों वर्ण द्विजाति अध्ययन करें, परन्तु उनमें प्रवक्ता, प्राध्यापक ब्राह्मण ही होना आवश्यक है, क्षत्रिय, वैश्य, अध्यापक नहीं होने चाहिए :

प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराइति निश्चयः।

मनु के इस वचन पर मेधातिथि ने भी यही माना है।

इसी तरह आगे चलकर ब्राह्मणादि का निरूपण करते हुए मनु कहते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं कि सभी वर्णों में अपने वर्ण की अक्षतयोनि पत्नी में उत्पन्न होनेवाली सन्तान ही ब्राह्मण होती है :

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेया··· ।।

यहाँ भी मेधातिथि ने इसी का समर्थन किया है। वे कहते हैं कि 'व्यक्ति के ज्ञान से जाति का ज्ञान होता है, स्वावयवसंस्थान-विशेषरूप व्यक्तियों का भेद विदित होता है। प्रकृत में गो, अश्व आदि के समान ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का भेद विदित नहीं होता। जैसे अतः घटत्व घटादि में समवेत होने से घटत्वादि जाति विदित होती है, वैसे ही ब्राह्मणत्वादि जाति विदित नहीं हो पाती। जैसे विलीत घृत और तेल में गन्धकरसादि के भेद से भेद विदित होता है, वैसे ही ब्राह्मणादि का भेद विदित नहीं होता। शौंच, आचार पिंगल केश आदि धर्मों से भी ब्राह्मणादि का भेद विदित नहीं होता; क्योंकि उक्त धर्मों का अन्यत्र भी सांकर्य दृष्ट हुआ करता है। व्यवहार के आधार पर भी ब्राह्मणादि का निर्णय नहीं होता; क्योंकि व्यवहार पुरुषाधीन होने से अव्यवस्थित होता है। पुरुषों में विप्रलम्भ अधिक होता है। इसलिए ब्राह्मणादि जातियों का लक्षण बतलाना आवश्यक है।

सभी वर्णों में समान जाति में उत्पन्न तथा विवाहिता पत्नी में उत्पन्न होनेवाले हीं उस उस जाति के माने जाते हैं। प्रायः माता-पिता की जो जाति होती है, विवाहिता पत्नी में उत्पन्न सन्तान उसी जाति की होती है। 'पत्नी' शब्द सम्बन्धी शब्द है, अतः उसका वोढा, विवाह करनेवाला ही पिता होता है। जिसने जिससे विवाह किया, उसमें उत्पन्न सन्तान भी उसी की होती है।

यहाँ विराट् पुरुष के मुख, बाहु आदि से ब्राह्मण आदि की उत्पत्ति हुई है, उस परम्परा में ब्राह्मण की विवाहिता एवं अक्षतयोनि ब्राह्मणी से उत्पन्न होनेवाला ब्राह्मण है।' यहीं उन्होंने याज्ञवल्क्य का भी उद्धरण दिया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः।
अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्धनाः॥

(याज्ञ० स्मृ० १.९०)

अगले वचनों में मनु ने संकर-जातियों की उत्पत्ति बतलायी है। उन श्लोकों पर भी मेधातिथि की टीका है ही। अतः उन वचनों को मूल मनुवचन ही मानना चाहिए।

आगे यह भी कहा है कि स्वजाति की कन्याओं से या अनन्तर-जन्य अर्थात् ब्राह्मण से क्षत्रिय-वैश्यकन्याओं एवं क्षत्रिय से वैश्य-कन्या में उत्पन्न अनुलोम संकर द्विजाति-धर्मवाले होंगे, अन्य संकर शूद्रधर्मा ही होंगे (१.४१)। इतना ही नहीं।

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जायतो बहिः।
……………सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥

की भूमिका में मेधातिथि ने स्पष्ट लिखा है।

ये चैत दिगन्तवासिनः किरात-बेन-दरदादयस्तेषामप्राप्तरूपं वेदेनानूद्यते, 'न जनमियात् नान्तमियात्' (बृह० १.३.१०)। अर्थात् किरात, वेन, दरद आदि जो दिगन्तवासी हैं, उनके अप्राप्तरूप का ही वेद अनुवाद करता है। 'न जनमियान् नान्तमियात्।' एतावता उनकी दृष्टि से भी भारत से बहिर्भूत देश ही दिगन्त हैं। यत्रासां दिशामन्तः के अनुसार वही देश दिशाओं के अन्त, अतएव दिगन्त है। 'न जनमियात्' आदि निषेधों में उन्हींका संसर्ग निषिद्ध है। 'मुखबाहू-रूपज्जानाम् (१०.४५) के अनुसार मेधातिथि ने भी 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों को विराट् के मुख, बाहु, ऊरू एवं पाद से उत्पन्न माना है। उनसे भिन्न जातिवालों को दस्यु' कहा है।

मेधातिथि भी चाण्डाल, श्वपच आदि के लिए ग्राम से बाहर रहना और उनके लिए सौवर्ण, राजत से अन्य पात्र रखने का विधान मानते हैं। (१०.५१)।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ।
राष्ट्रियैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ।। (को० १०.६१)

के अनुसार मनु ने कहा कि जहाँ वर्णदूषक वर्णसंकर पैदा होते हैं; वहाँ राष्ट्रवासी जनों के साथ वह राष्ट्र की शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। मेधातिथि भी कहते हैं :

तस्माद् वर्णसंकरो राज्ञा वर्जनीयः ।

अतएव राजा का यह कर्तव्य है कि वह वर्णसांकर्य न होने दे। कौटल्य भी कहते हैं : लोकः संकरादुच्छिद्यते । अर्थात् सांकर्य से लोक नष्ट हो जाता है।

सोचने की बात है कि जब चातुर्वर्ण्य में ही सांकर्य से राष्ट्र का नाश होता है, तब दस्युओं-म्लेच्छों को मिलाकर उनसे रोटी-बेटी एक करने के भीषण सांकर्य से कितना लोकक्षय हो सकता है। ऐसी स्थिति में यह कहना अशुद्ध ही है कि मेधातिथि ने यह व्यवस्था दी है कि मुस्लिम-मुगल, ईरानी, तुर्क आदि के साथ रोटी-बेटी एककर उनको मिला लेना चाहिए।'

५३वें श्लोक में यह भी स्पष्ट कहा है कि धर्मानुष्ठान के समय चाण्डालादि से दर्शन आदि व्यवहार ब्राह्मण करें। ऋण, दान, ग्रहण आदि व्यवहार और विवाह आदि भी उन लोगों को अपने समान जाति में ही करने चाहिए।

व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह । (मनु० १०.५२)

श्लोक १०.६७ में यह भी कहा है कि ब्राह्मण से शूद्र में उत्पन्न आर्य होता है, पर ब्राह्मण में शूद्र से उत्पन्न अनार्य ही होता है।

या वेदबाह्याः स्मृतयः याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ताः निष्फलाः प्रेत्यतमोनिष्ठा हिताः स्मृताः ॥
(मनु० १२.९५)

यहाँ भी मेधातिथि यही कहते हैं :

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यश्चाप्रमेयश्च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ।। (१२.९४)

अर्थात् कहा गया है कि देव-पितर-मनुष्यों के लिए वेद ही चक्षु है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जैसे चक्षु से रूप का बोध होता है, वैसे ही वेद से ही धर्मादि का दर्शन होता है। वेद सनातन, अपौरुषेय है, वेद की अनन्त शाखाएँ हैं। अनन्तत्वाद् वेदशाखानाम् (मेधातिथि) एतावता धर्म, ब्रह्म में अपौरुषेय वेद ही प्रमाण है और पौरुषेय, वेदबाह्य चैत्यवन्दनादि-बोधक बौद्धादि-स्मृतियाँ अप्रमाण ही हैं। यहाँ मेधातिथि ने चैत्यवन्दनेन स्वर्गोभवति इत्यादि बौद्ध-जैनादि स्मृतियों को अप्रमाण ही कहा है। स्पर्शास्पर्शादि-बोधक स्मृतियों को अप्रमाण नहीं कहा है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि "पुरुषों में अतीन्द्रिय पदार्थों की दर्शन की शक्ति नहीं है। पुरुषाणामतीन्द्रिय-दर्शनशक्त्यभावत्। अतः अमुक सर्वज्ञ है, उसके द्वारा यह ग्रन्थ निर्मित है, आदि कथन में कोई प्रमाण नहीं है।"

मनु के अनुसार (श्लोक १०.५३) जहाँ द्विजातियों का चाण्डाल, श्वपच आदि से व्यवहार भी निषिद्ध है और विवाह वर्जित है वहाँ सुतरां म्लेच्छादि से विवाहादि वर्जित ही समझना चाहिए। प्रतिलोम संकरों की जीविकाएँ भी मनु ने श्लोक १०.४८ से अनेक श्लोकों में पृथक् वर्णित हैं। उनको चैत्य-द्रुम, श्मशान, पर्वत, उपवनों आदि में निवास करना कहा गया है। मृतक-वस्त्र-परिधान, भिन्न भाण्डों में भोजन, कार्ष्णायस (लौहमय) अलंकार कहे गये हैं। उन्हें ग्रामादि में जाते समय राज-शासनों से चिह्नित होकर ही जाना चाहिए :

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः। (मनु० १०.५५)

इससे स्पष्ट है कि मनु और मेधातिथि को जाति-पाँति, आचार-विचार, विवाह आदि का भेद मान्य ही है। उक्त सभी श्लोकों पर मेधातिथि का भाष्य है।

लाक्षा, लवण, मांसादि के विक्रय से ब्राह्मण पतित हो जाता है, और क्षीर-विक्रय से ब्राह्मण तीन दिनों में शूद्र हो जाता है। म० १०.९२

मनु ने यह भी कहा है :

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात् पूर्वकृतेन वा।
न संसर्गं व्रजेत् सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अर्थात् दैवजात प्रमाद से या अन्यशरीरकृत पाप से प्रायश्चित्ती होकर द्विज जबतक प्रायश्चित्त न कर ले, तबतक साधु-पुरुषों से याजन, अध्ययन विवाह, भोजनादि संसर्ग न करें। मेधातिथि भी इसकी व्याख्या ऐसी ही करते हैं।

इतना ही क्यों :

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः।

स तस्यैव व्रतं कुर्यात् तत्संसर्गविशुद्धये ॥ (मनु० ११.१८०)

इस श्लोक में कहा गया है कि जो पुरुष जिस पतित से संसर्ग करता है, उसके लिए भी वही प्रायश्चित्त है जो उस पतित का प्रायश्चित्त है। मेधातिथि भी कहते हैं : **तस्मात् तत्समानं पतितत्वं भवति। अतः किश्चदूनं तत्समानं प्रायश्चित्तम्।**

…संसृजेद् वर्षं सोऽपि तत्समतानियात्।

पादन्यूनं चरेत् सोऽपि तस्य तस्य व्रतं द्विजः॥

इस व्यासवचन के अनुसार जो जिस पतित के साथ वर्षभर निवास करता है, वह उसके तुल्य ही हो जाता है। अतः तत्सम को भी पाद-न्यून वही व्रत करना चाहिए।

मुखबाहूरूपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्। (मनु० १.८७)

यहाँ मनु ने स्पष्ट ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों को प्रजापति मुख, बाहू तथा ऊरू एवं पाद से उत्पन्न होना माना है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शुद्रो अजायत॥

इस पुरुषसूक्त मंत्र की ही व्याख्या उक्त श्लोक है। पादान्त में वर्णों के अनुसार ही उनके पृथक्-पृथक् कर्मों का ही विधान है।

श्लोक ९३ में मनु ने उत्तमांग मुख से उद्भूत होने और ब्रह्म वेद को धारण करने के कारण ब्राह्मण का उत्कर्ष कहा है। श्लोक ११.१०३ में कहा गया है कि मनुस्मृति के प्रवचन अध्ययन का अधिकार भी ब्राह्मण को ही है, अन्य को नहीं। श्लोक २.६ में मेधातिथि भी वेद को ही धर्म का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मूल-प्रमाण कहते हैं। तदनन्तर वेदमूलक मन्वादि-स्मृति और तदनुसारी सदाचार, तदविरुद्ध आत्मतुष्टि को धर्म में प्रमाण माना है। श्लोक २.६ में कहा गया है कि मन्त्रों द्वारा जिसके निषेकादि-श्मशानान्त सब संस्कार समन्त्रक होते हैं, वही मनुस्मृति के अध्ययन का अधिकारी होता है। मनु के श्लोक २.२३ में मेधातिथि ने कहा है कि यदि साधु-आचार क्षत्रिय सभी म्लेच्छ-देशों को जीतकर वहाँ वर्णाश्रम की स्थापना कर म्लेच्छों को चाण्डाल व्यवस्थित कर दे तो वहाँ भी यज्ञ हो सकता है : यदि कश्चित् क्षत्रियो राजा साध्वाचरणी म्लेच्छान् पराजयेत, चातुर्वर्ण्य च वासयेत्, म्लेच्छांश्चाप्यार्यावर्ते इव चाण्डालान् व्यवस्थापयेत्, सोऽपि स्याद् यज्ञियो देशः। ज्ञातव्य है कि उन्होंने यहाँ यह कभी नहीं कहा कि म्लेच्छों को ब्राह्मणादि हिन्दू बना लिया जाय।

मनु ने श्लोक ३.१५ में कहा है कि मोहवशात् जो द्विजाति हीनजाति की स्त्री के साथ विवाह कर लेता है, वह अपने कुल को ही शूद्र बना देता है। मेधातिथि भी यहाँ यही कहते हैं कि "वह पुत्र-पौत्रादि-सहित शूद्र हो जाता है।" तब क्या मेधातिथि म्लेच्छ-कन्याओं से विवाह की अनुमति दे सकते हैं ?

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्वयेवनयन्त्याशु ससन्तानाभिशूद्रताम्॥ (२.१७)

यहाँ मनु कहते हैं कि शूद्रा को अपनी शय्या में लेने पर ब्राह्मण की ब्राह्मणता ही नष्ट हो जाती है। तब क्या मुगलानी के संसर्ग से ब्राह्मणता बनी रहेगी ? 'वृषली-फेनपान से तथा उसके निःश्वासोपहत होने पर पाप की निष्कृति ही नहीं है' ऐसा माननेवाले मेधातिथि मुगलानियों से विवाह की अनुमति कैसे दे सकते हैं ? आश्चर्य है कि श्री सावरकर ने अपनी पुस्तक में मेधातिथि के नाम पर अपनी बातों का समर्थन कैसे किया ! अतः निःसन्देह कहा जा सकता है कि मनु का मेधातिथि-भाष्य श्री सावरकर की धारणा के बिलकुल विपरीत है। कदाचित् कुल्लूकभट्ट आदि कई टीकाकारों द्वारा मेधातिथि का खण्डन सुनकर उन्हें वे सुधारक समझ बैठे हों।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अन्त में स्वर्गीय स्वातन्त्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर की अपनी पितृभूमि-पुण्यभूमि की रक्षा के लिए की गयी बलिदान-परम्परा का हृदय से समादर करते हुए भी कहना पड़ता है कि उनका यह ज्ञान आधुनिक पाश्चात्त्यशिक्षा की देन है। प्राचीन अनादि-वेदशास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का उन्हें ज्ञान नहीं था और उन्होंने श्रद्धा और गहराई से उसे प्राप्त करने का प्रयास भी नहीं किया। यदि वे ऐसा करते तो सोने में सुहागा का काम करता। और तब उन्हें इस तरह अपने वेद-शास्त्र, उनके अनुयायी, सच्चे ब्राह्मण एवं शास्त्र के अनुयायियों की तीक्ष्ण समालोचना करने का कभी प्रसंग ही न आता। उनकी राष्ट्रभक्ति की उत्तम भावनाओं में इस राष्ट्र की मौलिक धारणा की अनभिज्ञयता की जो कमी रही, उसीकी पूर्ति हेतु हमारा यह विनम्र प्रयास है।

ग्रंथ के उपसंहार में हम परमपिता परमात्मा से यही विनम्र प्रार्थना करेंगे कि वह भारतसहित निखिल भूमण्डल के समस्त देशवासियों को भारतीय वैदिक-संस्कृतिक की इन दिव्य पीयूष-धारणाओंसे अभिसिंचत एवं आप्यायित करें :

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥
काले वर्षतु पर्जन्यः प्रथिवी सस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणः सन्तु निर्भयाः ॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणऽ सन्तु पौत्रिणः।
अधना सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥

***

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के ग्रन्थ (धर्म प्रचारार्थ सहायता)

१—वेदार्थपारिजात	१८०)	२—रामायण मीमांसा	६०)
३—मार्क्सवाद और रामराज्य (प्रेस में)		४—विचार पीयूष	३०)
५—भक्ति सुधा	६०)	६—संकीर्तन मीमांसा एवं वर्णाश्रमधर्म	५)
७—वेद का स्वरूप और प्रमाण (भाग-२)	१५)	८—अहमर्थ परमार्थसार	१५)
९—क्या संभोग से समाधि ?	४)	१०—राहुलजी को भ्रान्ति	४)
११—तिथ्यादिनिर्णय. कुम्भनिर्णयश्च	२)	१२—स्वामी जी का संक्षिप्त जीवन परिचय	३)
१३—दशनामपराध	४)	१४—वेदान्तप्रश्नोत्तरी	५)
१५—अभिनवशंकरकरपात्री स्वामी	७५)	१६—बदलती दुनिया	५)
१७—भागवत सुधा	३०)	१८—मार्क्स और ईश्वर	५)
१९—वेदान्त रस सार	५)	२०—सर्व सिद्धान्त समन्वय	३)
२१—श्रीविद्या रत्नाकर	६०)	२२—चातुर्वर्ण्य संस्कृतिविमर्श	२०)
२३—श्रीविद्या वरिवस्या	१५)	२४—भक्तिरसार्णव	१०)
२५—वेद स्वरूप विमर्श	१०)	२६—वेद प्रमाण मीमांसा	२)
२७—श्रीकरपात्री दिग्विजय (मासिक)	५१)	२८—राधासुधा	३०)
		२९—प्रवचन पीयूष	४)
३०—भ्रमर गीत		३१—काल मीमांसा	३०)
३२—जाति राष्ट्र संस्कृति	४)	३३—ईशो उपनिषद् भाष्य	३०)
३४—जीवन दर्पण	३)	३५—शंका समाधान	(प्रेस में)
३६—विदेश यात्रा	४)	३७—श्री करपात्री संस्मरण	(प्रेस में)

संरक्षक—श्री वेदान्ती स्वामी, करपात्री पीठ केदारघाट, बाराणसी

मुद्रक—शारदा प्रिंटर्स, केदारघाट, वाराणसी

CC0. In Public Domain. Nirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection